वर्ष ४७] * * * [अङ्क ७

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

संस्करण १,५७,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर श्रावण, श्रीकृष्ण-संवत् ५१९९, जुलाई १९७३

चित्र-सूची

Free of charge] जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥ [बिना मूल्य

आदि सम्पादक—नित्यलीलालीन श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार। सम्पादक—चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीकृष्णकी भक्तवत्सलता

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

कल्याण
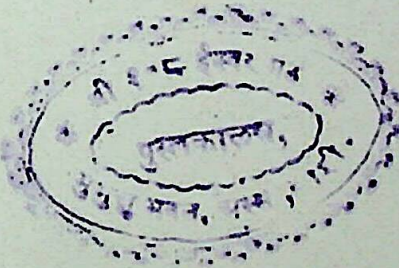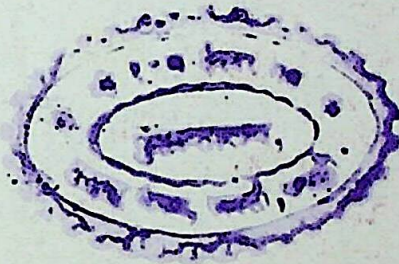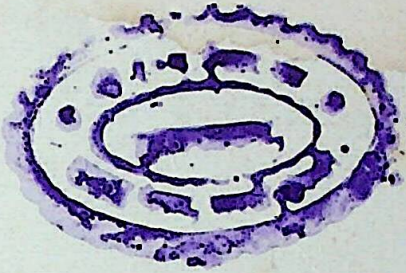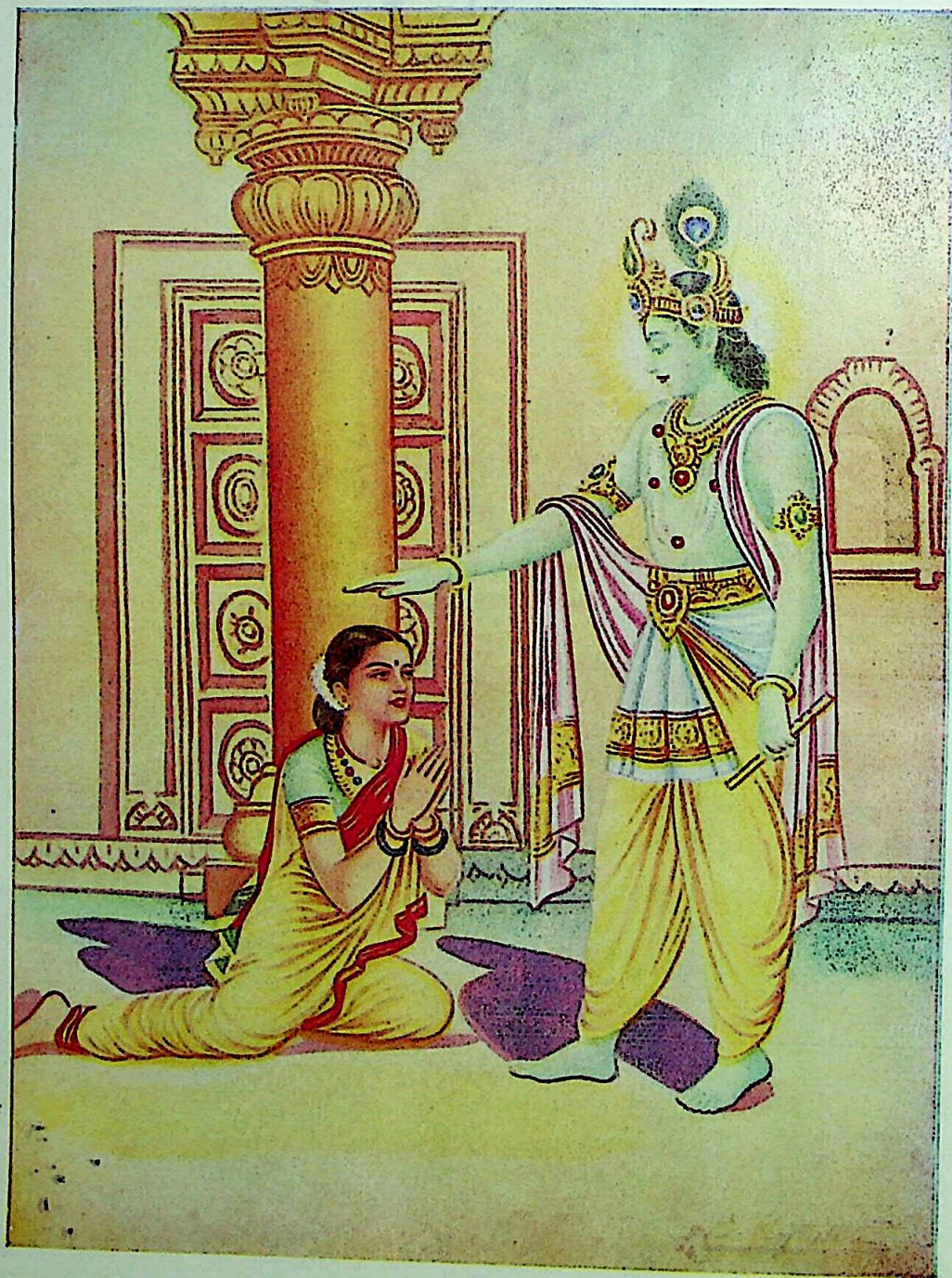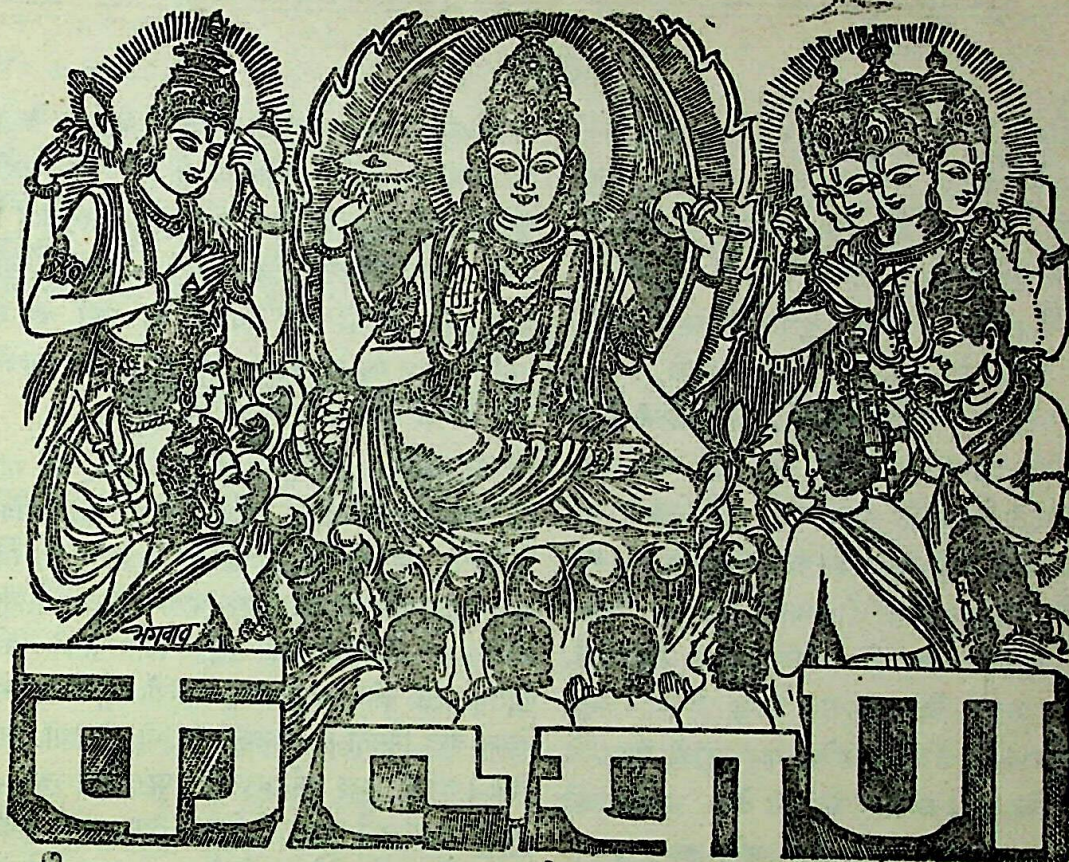
अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने । सदैकरूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे ॥
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शंकराय च । वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकारिणे ॥

(श्रीविष्णुपुराण १ । २ । १-२)

वर्ष ४७ } गोरखपुर, सौर श्रावण, श्रीकृष्ण-संवत् ५१९९, जुलाई १९७३ { संख्या ७
पूर्ण संख्या ५६०

श्रीश्यामसुन्दरकी प्रेमाधीनता

साँवरे सदा प्रेमाधीन ।
प्रेम-रसमय, रसिकवर, नित प्रेम-मधु-रस-लीन ॥
जपत प्रेमी-नाम संतत, करत प्रेमी-ध्यान ।
रहत मोहित लखि मधुर तिनकी अधर-मुसकान ॥
सुखी करिबे हित तिनहि, तजि सकल ईस्वर-भाव ।
भूलि भगवत्ता सहज, सेवत तिनहिं अति चाव ॥
सहज करि सर्वस्व-अर्पन, इष्ट तिन कौं मान ।
चरन-रज-कन लेत तिन के, धन्य-जीवन जान ॥

—'भाईजी'

कल्याण

जीवनमें सर्वप्रथम हम निश्चय करें कि हमें कहाँ जाना है—हमारे जीवनका लक्ष्य क्या है, हमको संसारमें क्या पाना है ? लोक-व्यवहारमें यात्रा आरम्भ करनेके पूर्व हम यह निश्चय करते हैं कि हमें कहाँ जाना है। स्टेशनपर जाकर बुकिंग आफिसके सामने कोई खड़ा हो जाय और कहे—'बाबूजी ! हमें टिकट दीजिये।' बाबूके पूछनेपर कि 'कहाँकी टिकट चाहिये ?' उत्तर—'यह तो पता नहीं, कहाँ जाना है। बस, टिकट दे दीजिये।' बाबू उसकी बात सुनकर हँसेगा और कहेगा कि बिना किसी स्थानका नाम बताये कहाँकी टिकट दी जाय। यदि यह निश्चय कर लिया जाय कि कलकत्ता जाना है, बंबई जाना है, नागपुर जाना है या अमुक स्थानपर जाना है तो माँगनेपर बाबू वहाँकी टिकट दे देंगे; फिर कोई-न-कोई बता भी देगा उस टिकटको देखकर कि 'अमुक गाड़ीमें बैठो, आगे चलकर अमुक-अमुक स्थानोंपर गाड़ी बदलो और गन्तव्य स्थानपर पहुँच जाओ।' बिना गन्तव्य स्थानका निश्चय किये न टिकट मिलती है और न कोई जानेका मार्ग ही बतलाता है। यही बात जीवनके सम्बन्धमें है। जीवनका लक्ष्य निश्चय हो जानेपर वहाँतक पहुँचनेका मार्ग ज्ञात हो जायगा और मार्गकी कठिनाइयोंका तथा उनसे मुक्त होनेका उपाय भी कोई-न-कोई बता ही देगा।

संसारमें अधिकांश व्यक्ति निरुद्देश्य ही भटक रहे हैं। संसारके भोगोंमें सुखकी खोज करना, यह निरुद्देश्य ही भटकना है। अभी सुख मिला, इससे मिला, इससे नहीं मिला तो उससे मिलेगा, उससे नहीं मिला तो उससे मिलेगा,—इस प्रकार एक-एक करके भोगोंमें सुखकी खोज होती है; पर सुख कहाँ मिलेगा, यह किसीको पता नहीं। जहाँ-जहाँ मनुष्य सुख खोजने जाता है, वहाँ-वहाँ वह उससे वञ्चित ही रहता है। भगवान्ने जो डंकेकी चोट इस लोकको 'अनित्यम्, असुखम्' कहा है, उनकी उस उक्तिका आशय यह है कि जगत्में कहीं सुख है नहीं, जगत् विनाशी है तथा सुखसे विरहित है। परंतु मनुष्य भगवान्के इन वचनोंपर विश्वास नहीं करता और सुखको वहाँ खोजता है, जहाँ वह है नहीं। उसका यह प्रयत्न ठीक वैसा ही है, जैसा जलकी इच्छा होनेपर रेगिस्तानकी बालूमें उसे खोजना।

रेगिस्तानका दृश्य है—हरिनोंकी टोली जा रही है। सब-के-सब प्याससे व्याकुल हैं। प्रातःकालका समय है, सूर्यकी किरणें बालूके मैदानपर पड़ रही हैं। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि सामने जलका समुद्र लहरा रहा है। हरिनोंका समूह पानी पीनेके लिये त्वरासे उस ओर बढ़ता है; पर वहाँ पहुँचनेपर उसे केवल बालू मिलती है; जलकी बूँद भी दिखायी नहीं देती। हरिन कुछ आगे बढ़ते हैं, परंतु वही दशा—बालूके सिवा वहाँ कुछ नहीं मिलता तथा जलकी प्रतीति कुछ और आगे होने लगती है। इस प्रकार जैसे-जैसे हरिन उस तप्त बालूपर छलाँग मारते हुए आगे बढ़ते हैं, त्यों-त्यों और अधिक तप्त बालू मिलती चली जाती है एवं जलकी प्रतीति आगेकी ओर होती जाती है। इस प्रकार जलकी खोजमें तप्त बालूके कारण कितने ही हरिन घायल हो जाते हैं तथा कुछ अपने प्राण भी गँवा बैठते हैं। यही दशा संसारमें हमारी हो रही है। हमलोग संसारमें जिनके पास अधिक भोग हैं, उनको सुखी मानकर, शान्त मानकर ललचायी आँखोंसे उनकी ओर देखते हैं तथा वे जिस स्थितिमें हैं, उस स्थितिको प्राप्त करना चाहते हैं। सुखकी ललकमें हम चाहते हैं—अमुक राजाके समान बनें, अमुक अधिकारीके समान बनें, अमुक मन्त्रीके समान बनें, अमुक व्यवसायीके समान बनें, अमुक धनीके समान बनें। इतना ही नहीं, हम वैसा बननेका प्रयत्न भी करते हैं, पर क्या हमारा यह

प्रयत्न कभी सफल हुआ है? हम जैसा बनना चाहते हैं क्या हम वैसा बन पाते हैं? यदि बन भी जाते हैं तो वहाँ भी हमें वही दुःखकी ज्वाला मिलती है, जो हमें अपनी पुरानी स्थितिमें प्राप्त थी। सर्वत्र यही हो रहा है और इसका परिणाम भी प्रत्यक्ष है कि हरिनोंकी भाँति सभी संतप्त हैं और सभी तड़प-तड़पकर अपना जीवन दे रहे हैं।

जीवनकी इस वास्तविकताको हम समझें और निश्चय करें कि जगत्के भोगोंमें सुख-शान्ति कहीं भी नहीं है—नहीं है, नहीं है; अतएव वे हमारे जीवनका लक्ष्य नहीं हो सकते। भगवान् ही नित्य शान्तिके, नित्य सौख्यके उत्स हैं; उन्हींको प्राप्त करना हमारे जीवनका एकमात्र लक्ष्य होना चाहिये। 'भाईजी'

ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतोपदेश

आज सर्वत्र कञ्चन, कामिनी, शरीरका आराम, मान-बड़ाई आदिकी लालसाने सबके हृदयको आच्छादित कर रखा है। सच्चा सत्सङ्ग मिलना बड़ा कठिन हो गया है। ऐसी स्थितिमें एकान्तमें बैठकर भगवान्के शरण होकर आर्तभावसे उन्हें निवेदन करना चाहिये—"नाथ! मैं आपके शरण होकर पूछता हूँ कि धर्म क्या है, अधर्म क्या है? आपके तत्त्वको जानकर आपको प्राप्त कर लेना, यही मेरे जीवनका लक्ष्य होना चाहिये; किंतु इस लक्ष्यको भुलाकर विषय-भोगोंमें ही अपना जीवन खो रहा हूँ, यह मेरी 'मूर्खता' है—कृपणता है। नाथ! अज्ञानके कारण मैं कर्तव्य-अकर्तव्यका निर्णय करनेमें सर्वथा असमर्थ हो गया हूँ। अतएव मैं आपके शरण हूँ और 'त्वां पृच्छामि'—आपसे ही पूछता हूँ। जो साधन मेरे लिये निश्चित रूपसे कल्याणकारक हो, उसे आप कहिये। आप मुझे शिक्षा दीजिये।"

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥
(गीता २। ७)

सच्चे हृदयसे इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भगवान् निश्चय ही मार्ग दिखलाते हैं। साधकके जीवनमें ऐसे क्षण आते हैं, जब काम, क्रोध, लोभ एवं मोह आदि शत्रु उसको चारों ओरसे घेर लेते हैं और उसे परास्त करना चाहते हैं। ऐसी विकट परिस्थितिमें भी एकान्तमें बैठकर भगवान्से उपर्युक्त भावकी प्रार्थना करनी चाहिये। काम-क्रोध आदि विकार डाकू हैं। जब डाकुओंका आक्रमण होता है, तब पुलिस-विभागको सूचना देनेपर हमारी रक्षा हो जाती है। इसी प्रकार जब हम भगवान्से काम-क्रोध आदि डाकुओंसे बचनेके लिये प्रार्थना करेंगे तो निश्चित ही भगवान्की ओरसे हमें उन डाकुओंसे बचनेके लिये सहायता प्राप्त होगी। पुलिसके कर्मचारी सर्वत्र उपलब्ध नहीं हो सकते, पर भगवान् तो सर्वव्यापक हैं; वे सब स्थानोंमें, सब समय उपस्थित रहते हैं। अतएव उनको किसी भी समय, किसी भी स्थितिमें और किसी भी स्थानपर पुकारा जा सकता है और वह पुकार अवश्य सफल होती है। यद्यपि भगवान्को इस प्रकार पुकारना सकाम भाव है, फिर भी यह निष्काम भावके ही तुल्य है; क्योंकि काम-क्रोध आदि शत्रु भजन-साधन लूटनेवाले हैं। अतएव उनसे रक्षाके लिये प्रार्थना करना निष्काम भाव ही है। इसी प्रकार भगवान्से यह प्रार्थना करें कि 'हमारा मन स्त्री, पुत्र, धन आदिमें न लगकर आपमें हमारा अनन्य प्रेम हो जाय, जगत्में कहीं भी आसक्ति-ममता-मोह-राग न रहे, मान-बड़ाई आदिकी कामना न रहे।' ऐसी प्रार्थना करनेमें भी कोई दोषकी बात नहीं है। आजके विकट

वातावरणमें तो हमारी समझमें एकान्तमें बैठकर प्रभुसे प्रार्थना करना ही उत्तम साधन है।

× × × ×

साधनामें गुरुका प्रमुख स्थान है। किंतु आजके युगमें किसको गुरु बनाया जाय, यह समस्या सभीके सम्मुख है। अतएव साधक लोग यह प्रश्न पूछते हैं कि 'यदि कोई ऐसा श्रेष्ठ पुरुष न मिले, जिसको गुरु बनाया जा सके तो उस स्थितिमें साधना कैसे की जाय ?' इसके उत्तरमें यही निवेदन है कि किसी योग्य अधिकारी गुरुके अभावमें प्राचीन महात्माओं, संन्यासियों एवं भक्तों आदिको स्मरण करके उनके जीवन एवं उपदेशोंसे हम शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। संन्यासीके रूपमें शुकदेव एवं सनकादिक, ज्ञानीके रूपमें जनक आदि, योगीके रूपमें याज्ञवल्क्य आदि, आदर्श गृहस्थके रूपमें अम्बरीष आदि तथा भक्तके रूपमें ध्रुव और प्रह्लाद आदिको स्मरणकर हम उनसे प्रेरणा ग्रहण कर सकते हैं। सर्वोत्तम प्रेरणाके स्रोत तो भगवान् हैं। हम गुरुके रूपमें परमात्माको स्मरण कर सकते हैं; वे परम गुरु हैं—'कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्'।

गुरुकी प्राप्तिका निरापद मार्ग यह है कि हम भगवान्से उसके लिये प्रार्थना करें— 'नाथ ! मैं असहाय हूँ, अकेला साधनपथपर चल नहीं पाता। अतएव मुझे कोई योग्य संरक्षक—गुरु दीजिये।' प्रार्थना सच्ची होनेपर भगवान् निश्चय ही हमें किसी योग्य पुरुषका साथ दे देंगे अथवा वे स्वयं ही महात्मा—गुरुके रूपमें आकर हमें सँभाल लेंगे।

× × × ×

हमारे यहाँ भगवान्के मन्दिरमें जाकर भगवद्विग्रहोंका दर्शन करने तथा चरणामृत लेनेकी जो परिपाटी है, वह बहुत ही सुन्दर एवं उपादेय है। मन्दिर हमारे धर्म-प्रचारमें बहुत सहायक हैं। यही हेतु है कि प्राचीन-कालसे मन्दिरोंका निर्माण होता आया है। किंतु समयके अनुसार आज मन्दिरोंकी व्यवस्थामें परिवर्तन आ गया है तथा वहाँका वातावरण पहले-जैसा सात्त्विक नहीं रहा। इस स्थितिमें बालकों एवं स्त्रियोंको घरके पुरुषोंके साथ ही मन्दिरोंमें जाना चाहिये। इस परिपाटीका दूसरा रूप यह भी है कि घर-घरमें मन्दिरोंकी स्थापना हो जाय। हमारा यह कहना इन कारणोंसे है—प्रथम तो सभी स्थानोंमें मन्दिर मिलते नहीं। दूसरे सभी जाकर अपनी इच्छाके अनुसार अपने हाथों सेवा-पूजा नहीं कर सकते। तीसरे, सब मन्दिरोंकी व्यवस्था आजकल प्रायः ठीक नहीं रही। चौथे, घरके सब स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध मन्दिरोंमें नियमित-रूपसे जा भी नहीं सकते। परंतु घरमें धातु अथवा पाषाणसे निर्मित भगवान्की कोई-सी मूर्ति या चित्र सभी रख सकते हैं और उसकी पूजा अपने-अपने मतके अनुसार या गीताप्रेससे प्रकाशित 'प्रेमभक्ति-प्रकाश' पुस्तिकामें बतलायी हुई विधिके अनुसार स्त्री-पुरुष—सभी कर सकते हैं। घरमें नित्य भगवान्की पूजा होनेसे उसके लिये पूजाकी सामग्री जुटाने, पुष्पोंकी माला गूँथने आदिमें बहुत-सा समय एक तरहसे भगवत्-चिन्तनमें लग जाता है। बालकोंको भी इसमें बड़ा आनन्द मिलता है, वे भी इसको सीख जाते हैं। लड़कपनसे ही उनके हृदयमें भगवत्सम्बन्धी संस्कार जमने लगते हैं। व्यर्थके खेल-कूदकी बात भूलकर उनका चित्त इसी सत्कार्यमें प्रमुदित होने लगता है। छोटी उम्रके संस्कार आगे चलकर बड़ा काम देते हैं। भक्तिमती मीराँबाई आदिमें लड़कपनके मूर्ति-पूजाके संस्कारसे ही बड़ी उम्रमें भक्तिका विकास हुआ था।

अतएव मैं सभी भाइयोंसे—वेद, शास्त्र और पुराणादि न माननेवाले भाइयोंसे भी विनीत भावसे यह प्रार्थना करता हूँ कि यदि वे ठीक समझें तो अपने-अपने घरमें इस कामको तुरंत आरम्भ कर दें। भगवान्की पूजाके साथ ही घरके सब पुरुष, स्त्रियाँ और बालक मिलकर भगवान्का नाम लें। पूजा चाहे एक ही व्यक्ति करे, पर पूजाका अधिकार सबको हो। पुरुष न हो तो स्त्री पूजा कर ले, स्त्री न कर

सके तो पुरुष कर ले। सारांश यह है कि भगवत्-पूजनमें नित्य कुछ-कुछ समय लगता रहे। इससे घर-भरमें श्रद्धा-भक्तिका विकास हो सकता है। अर्चन-भक्तिका आरम्भ कर इसका फल तो देखें; इससे अधिक विश्वास दिलानेका मेरे पास और कोई साधन नहीं।

वास्तवमें मन्दिरके लिये सर्वोत्तम स्थान तो अपना हृदय ही है। हम अपने हृदयमें ही अपने आराध्यको बैठा लें और मानसिक रूपसे उनकी सेवा-अर्चना करते रहें।

× × ×

साधकके लिये यह आवश्यक है कि वह अपनी साधनाकी विरोधी वस्तुओंसे निरन्तर सावधान रहे। साधनाकी विरोधी वस्तुओंमें प्रमुख हैं—काञ्चन, कामिनी, मान-बड़ाई, नास्तिकोंका सङ्ग, विषयोंका सङ्ग, विषयीजनोंका सङ्ग आदि। ये वस्तुएँ अच्छे-अच्छे साधकोंका भी पतन कर देती हैं; फिर साधारण मनुष्यकी तो बात ही क्या। अतएव प्रत्येक मनुष्यको इनसे सावधान रहना चाहिये।

साधकको इस दोहेको निरन्तर याद करना चाहिये—

कंचन तजना सहज है, सहज त्रियाका नेह।
मान-बड़ाई-ईरषा दुर्लभ तजना येह॥

—इस दोहेमें पाँच चीजें बतलायी हैं—काञ्चन, कामिनी, मान, बड़ाई और ईर्ष्या। ये पाँचों ही घातक हैं। कोई कितने ही ऊँचे दर्जेका साधक क्यों न हो, उसे इनसे सावधान रहना चाहिये। प्लेगकी तरह इनसे डरता रहे। वास्तवमें प्लेगसे उतना भय नहीं है, जितना इनसे है। अतएव इनसे बराबर सावधान रहनेकी आवश्यकता है। (पुराने सत्सङ्गसे)

तुम तो मेरे स्वजन रहोगे !

('संसार जदि नाहि पाइ साड़ा, तुमि त आमार रहिबे'
—बँगला पदका भावानुवाद)

भले पुकारूँ, पर न जगत्‌से उत्तर पाऊँ;
तुम तो मेरे स्वजन रहोगे !
मिले न कोई मेरा भार उठानेवाला,
तुम तो उसको वहन करोगे।
मेरा कलुष कराल, दीनता दारुण-दुस्तर,
करें प्रहारोंकी बौछार तुम्हारे ऊपर,
और दूसरा कोई उसको सहे न चाहे,
तुम तो निश्चय, बन्धु ! सहोगे।
छिन्न-भिन्न हो जाय सुमनकी माला मेरी,
डलियामें रह जाय धरी फूलोंकी ढेरी,
पर न विफल होगा मेरा फूलोंका चुनना,
तुम चरणोंमें ले ही लोगे।
दुःखोंसे अब नहीं लगेगा मुझे तनिक डर,
काँटोंका हो हार भले ही मेरे उरपर,
मुझे विदित है—तुम मुझको निर्मल कर दोगे,
जितना ज्वालामें झोंकोगे।

—माधवशरण, एम० ए०, एल्-एल्० बी०

संत-समागम

[अनन्तश्रीविभूषित तमिळनाडुक्षेत्रस्थ श्रीकाञ्चीकामकोटिपीठारूढ जगद्गुरु शंकराचार्य कनिष्ठस्वामी श्रीजयेन्द्रसरस्वती (पुदु पेरियवाळ) महाराजके सदुपदेश]

[यथाश्रुत यथागृहीत]

पूज्या गोमाताकी रक्षा करो !

गोमाता हमारी पूज्या माता हैं। धर्मप्राण भारतमें गोमाताकी रक्षा अवश्य होनी चाहिये। गोहत्या बंद होनी चाहिये, इसमें दो मत नहीं हो सकते। कुछ लोग कहा करते हैं कि 'गोमाताकी रक्षा होनी चाहिये—पर केवल उन गोमाताओंकी, जो दूध देती हैं। जो गायें दूध नहीं देतीं और जो बूढ़ी-लँगड़ी-लूली हैं, अपाहिज हैं, उनकी रक्षा करनेसे क्या लाभ ?' उनकी यह बात कदापि मान्य नहीं हो सकती। जो गायें लँगड़ी, बूढ़ी और अपाहिज हैं, उनकी रक्षा करनेकी, सेवा करनेकी तो और भी अधिक आवश्यकता है। गाय दूध दे या न दे, हर हालतमें पूज्य वह है। गोमाताकी रक्षा—सेवा करना हमारा परम धर्म है। गोमाता हम हिंदुओंकी मानबिंदु हैं। गोमाताके शरीरके अंदर ३३ करोड़ देवी-देवता निवास करते हैं। गो-रक्षा श्रीभगवान्‌के अवतारका एक हेतु हुआ करता है। स्वयं भगवान् इस धराधामपर अवतीर्ण होकर नंगे पाँवों जंगल-जंगल गाय चरानेके लिये घूमा करते हैं। वे अपने हाथोंसे गौकी सेवा-पूजा किया करते हैं। इससे बढ़कर गोमाताकी अद्भुत महत्ता भला और क्या होगी ? दुःख है कि आज हम हिंदू होकर भी अपनी गोमाताकी सेवा और रक्षा नहीं करते। गोमाताकी यह उपेक्षा कदापि उचित नहीं है। आज अपने देशमें बहुत-से लोग अपने घरोंमें विदेशोंसे कुत्ते मँगा-मँगाकर पालते हैं, उन कुत्तोंकी अपने हाथोंसे सेवा करते हैं और कुत्तोंपर खुले हाथ रुपया खर्च करते हैं; पर जो गाय हमारी पूज्या है, जो हमें अमृतके समान दूध प्रदान करती है, लोक-परलोकमें हमारा साथ देकर हमें भवसागरसे पार लगानेकी सामर्थ्य रखती है, उस गोमाताकी उपेक्षा कितने दुःख और आश्चर्यकी बात है। गाय नित्य हमारे घरमें रहती है; उसकी हम नित्य पूजा किया करते हैं। गाय और गजकी पूजा करना हमारे यहाँ नित्यका क्रम माना गया है। हिंदुओंका यह धर्म है कि अपने घरोंमें गाय रखें। गोमाताकी सेवा-पूजा करनेसे लोक-परलोक दोनों ही बनते हैं। कौन-सा ऐसा कार्य है, जो गोमाताकी कृपासे न बन जाय ? गोरक्षासे जहाँ हिंदुओंका और भारतका कल्याण है, वहाँ समस्त विश्वका और अन्य सभी धर्मावलम्बियों—मुसल्मान-ईसाई आदिका भी कल्याण है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। गोमाताकी रक्षा होनेसे उसके दिये हुए दूध, घी, मक्खनसे और उसके बैलोंसे सभीको लाभ पहुँचेगा। ऐसी पूज्या और उपयोगी गायकी रक्षा क्यों न की जाय ? समस्त भारतमें गोपालन-कार्यक्रमको बढ़ावा दिया जाना चाहिये।

अपने खान-पानको शुद्ध रखो !

पहले हिंदुओंका खान-पान बड़ा शुद्ध, पवित्र और सात्त्विक था। इसी कारण हिंदू उन्नतिके शिखरपर पहुँचे हुए थे। पर आज हिंदुओंका खान-पान बहुत बिगड़ गया है। खान-पानकी ओर हमें विशेष ध्यान देना चाहिये। हिंदुओंको अपना आहार शुद्ध-पवित्र रखना चाहिये। मांस-मत्स्य-मद्य आदिका सेवन बड़ा हानिकर है। होटलोंमें खाने-पीनेसे जीवनमें दोष प्रवेश कर जाते हैं। जिसका खान-पान ठीक नहीं है, उसका मन भी कभी शुद्ध—सात्त्विक नहीं रह सकता। अशुद्ध मनसे कभी शुभ कर्म नहीं हो पाते। खान-पानका मन तथा बुद्धिके ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ता है। 'जैसा खाये अन्न, वैसा बने मन।'—यह बात झूठी नहीं है। शुद्ध अन्नके सेवनसे शुद्ध मनका निर्माण होता है और शुद्ध मनके द्वारा ही शुभ कर्ममें प्रवृत्ति सम्भव है तथा शुभ कर्मोंके द्वारा ही हमें परमपिता परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। हमारी सद्गतिका मूल तन-मन-कर्मकी शुद्धता है। इसलिये खान-पानपर ध्यान देना बहुत ही आवश्यक है। आजकल देशमें घोर पापाचार, अनाचार, व्यभिचार आदि हो रहे हैं; इन सबका एकमात्र मूल कारण है—मनका अशुद्ध होना। मनमें शान्ति एवं समाजमें सुखकी स्थापनाके लिये आहारकी शुद्धता और पवित्रता आवश्यक है।

शुद्ध अन्नसे तात्पर्य क्या है ?

शुद्ध अन्नसे तात्पर्य है—शुद्ध कमाईका अन्न। वह अन्न सात्त्विक होना चाहिये तथा उसके भोजन पवित्रतापूर्वक

पवित्र व्यक्तिद्वारा बनाया गया हो। ऐसा शुद्ध-सात्त्विक भोजन यदि भगवान्‌को भोग लगाकर प्रसादरूपमें पाया जाता है तो वह भगवत्प्राप्तिमें बड़ा सहायक होता है। उससे स्वास्थ्य और परलोक, दोनों ही बन जाते हैं। शुद्ध भोजनका क्या प्रभाव पड़ता है, इसका हमें प्रत्यक्ष अनुभव है—'हमारा दल मध्यप्रदेशके वन-क्षेत्रसे उत्तरप्रदेशमें प्रवेश कर रहा था। रातके लगभग १० बजे थे। खतरेका आभास पाकर उत्तरप्रदेशके एक काँस्टेबलने अपने डंडेसे एक जानवरपर प्रहार करना चाहा। तभी उसके साथी मध्यप्रदेशके पुलिसमैनने उससे कहा—'याद रखो, तुम स्वामीजीके साथ हो; अतः जानवरको मारो नहीं, उसे केवल भगा दो।' इसपर उस पुलिसमैनने डंडा चलाया नहीं और जानवर भाग गया। यह सद्विचार मध्यप्रदेशवाले पुलिसमैनके मस्तिष्कमें उत्पन्न क्यों हुआ? अपने हाथका या अपने घरका शुद्ध पवित्र भोजन करनेके कारण यह सद्विचार उसमें स्फुरित हुआ। मध्यप्रदेशका यह काँस्टेबल अपने हाथसे ही रोटी बनाकर खाता-पीता है। वह बाजारका या होटलका बना अशुद्ध भोजन नहीं करता। होटलके भोजनकी तुलनामें घरका बनाया हुआ भोजन बहुत उत्तम होता है। नौकर और होटलवाले जब भोजन देते हैं तो उनकी भावना यही रहा करती है कि यह व्यक्ति कम-से-कम भोजन करे, जिससे हमारे लिये भी भोजन बचा रहे और हमें फायदा हो। इधर माताद्वारा भोजन कराते समय माताकी भावना यही रहा करती है कि मेरा बच्चा खूब भरपेट भोजन करे और अच्छा बने; इसके अतिरिक्त वह और कुछ नहीं चाहती। होटलोंके स्वार्थपूर्ण, शुद्धतारहित वातावरणमें भोजन करनेवालोंकी बुद्धि भ्रष्ट नहीं होगी और उनसे पाप नहीं बनेंगे तो क्या होगा? इसलिये यदि आप अपना कल्याण चाहते हों तो अपने घरका बना, शुद्ध, पवित्र, सात्त्विक भोजन भगवान्‌को भोग लगाकर प्रसादरूपमें ग्रहण करें; तभी आपकी बुद्धि शुद्ध होगी और तभी आपका मन शुद्ध होगा और तभी आपसे शुभ कर्म बनेंगे। रजस्वला स्त्रीके हाथका बना तथा होटलमें बना भोजन घोर अधःपतन करनेवाला होता है। शुद्ध सात्त्विक भोजन करें; तभी आपकी आध्यात्मिक उन्नति होगी।

भारतकी अद्भुत महत्ता समझो!

भारत समस्त विश्वमें एक बड़ा ही अद्भुत—विलक्षण देश है। भारत धर्मप्राण ऋषि-मुनियोंका देश है। भारत ही एक ऐसा अद्भुत राष्ट्र है, जहाँ साक्षात् अनन्तकोटिब्रह्माण्ड-नायक परात्पर ब्रह्मका भगवान् श्रीरामके रूपमें तथा भगवान् श्रीकृष्णके रूपमें अवतार हुआ है। भारतके प्रत्येक प्रान्तमें बड़े-बड़े संत-महात्माओंका आविर्भाव हुआ है। श्रीशंकर, ज्ञानेश्वर, समर्थगुरु रामदास, चैतन्य, मीरा, नानक, तुलसी, सूर, कबीर, दादू, रैदास आदि बड़े-बड़े संत हुए हैं। भगवान्‌की लीलास्थलियाँ—व्रज, अवध, द्वारका, दण्डकारण्य आदि पुण्यप्रदेश तथा गङ्गा, यमुना, सरयू, नर्मदा और गोमती आदि पवित्र नदियाँ इसी देशमें विद्यमान हैं। भारतका प्रत्येक कण-कण परम पवित्र है। यह दिव्य देवभूमि है। भारतके महान् गौरवको समझकर भारतमें रहते हुए तथा पापोंसे बचते हुए खूब धर्मार्जन करना चाहिये। परम्परागत भाषा-भोजन-वेषकी रक्षा करते हुए अपने व्यक्तिगत आचरणद्वारा लोगोंमें आत्मीयताकी भावना भर दें। 'काला अंगरेज' बनना शोभा नहीं देता।

हिंदू-धर्मकी रक्षा करो!

आज चारों ओरसे हिंदू-धर्म, हिंदू-सभ्यता, हिंदू-संस्कृतिपर प्रहार हो रहे हैं, जिसके फलस्वरूप हिंदू-जातिका बड़ा ह्रास होता चला जा रहा है। इस परिस्थितिमें अपने हिंदू-धर्मको बचानेका भरसक प्रयत्न करना आवश्यक है। प्रारम्भसे ही हम अपने बालकोंको धार्मिक शिक्षा दें, उन्हें अपने देशकी देवभाषा संस्कृत पढ़ायें। बालकोंके नाम भारतीय रखें। हमारे विचार-व्यवहारमें तथा भाषा-भूषामें भारतीयता हो। शिखा-सूत्रको आदर दें। ईश-वन्दनाका संस्कार बालकोंमें शैशवकालसे ही डालना चाहिये। गरीबोंकी, आर्तोंकी, उपेक्षितोंकी अन्न-वस्त्र, शिक्षा, चिकित्सा आदिसे भरपूर सेवा करनी चाहिये, जिससे वे विधर्मियोंके चंगुलमें न फँस सकें। गीता-रामायणका जितना प्रचार सम्भव हो, करना प्रत्येक हिंदूका कर्त्तव्य है।

श्रीभगवन्नामामृतका पान करो!

यह कलिका घोर समय है। इस समय योग, यज्ञ, जप-तप आदि साधन बनने बड़े ही कठिन हैं। इसलिये सबको भगवान् श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीशंकर आदिके परम पवित्र नामोंका जप या गान करना चाहिये। श्रीभगवन्नाम-संकीर्त्तन ही कलिकालमें एकमात्र कल्याणका साधन है। श्रीभगवन्नामके आश्रयसे सरल साधन अन्य कोई है ही नहीं।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

'श्रीराम जय राम, जय जय राम।' आदिका मिलकर संकीर्त्तन करना चाहिये। श्रीभगवन्नामामृतके पान करनेका सभीको अधिकार है। इसका जप और संकीर्त्तन सभी कर सकते हैं। परम कल्याणकारक इन नामोंके जप-कीर्तनसे कोई भी कृतकृत्य हो सकता है। कलियुगमें भगवन्नामके अतिरिक्त कोई भी साधन नहीं है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

बोलो सनातनधर्मकी जय!

(प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

त्यागकी महत्ता

(योगिराज अनन्तश्री देवरहवा बाबाका उपदेश)

बात तो पुरानी है; लेकिन इसमें भी एक रहस्य भरा है, जिसका गम्भीरतासे विचार करनेपर पता चलता है। यह सभी जानते हैं कि अभिमन्यु अर्जुनका पुत्र था और जब वह अपनी माता सुभद्राके गर्भमें था, तब समय-समयपर अर्जुन अपनी पत्नी सुभद्राको चक्रव्यूहकी रचना आदिकी बातें समझाया करते थे। चक्रव्यूहकी रचना, उसमें प्रवेश करनेका मार्ग और उससे आसानीसे निकल आनेका मार्ग इत्यादि उस समयकी लड़ाईके गूढ़ रहस्य माने जाते थे अर्जुनने वर्णन तो ठीक किया; किंतु संयोगवश अभी चक्रव्यूहकी रचना एवं प्रवेशमार्गका वर्णन ही हो पाया था कि बालक अभिमन्युका जन्म हो गया और वह जन्मजात वीर पैदा हुआ।

जब महाभारतका युद्ध छिड़ा, तब अभिमन्यु केवल १८ वर्षकी आयुका था और वह युद्धमें कूद पड़ा। दूसरी ओर द्रोणाचार्यद्वारा निर्मित चक्रव्यूह था, जिसमें प्रवेश और निकलनेकी कला उस समय केवल अर्जुनको ही ज्ञात थी और अर्जुन उस स्थानसे कहीं दूर थे। वे अभिमन्युकी सहायताको नहीं पहुँच सके। परिणाम यह हुआ कि अभिमन्यु चक्रव्यूहमें घुस तो गया, किंतु निकल नहीं सका और वहीं मारा गया। उसे निकलनेकी कलाका ज्ञान नहीं था। यदि अभिमन्युको इस कलाका भी जन्मसे ज्ञान होता तो वह अपनी युवावस्थामें इस प्रकार मारा नहीं जाता। कहनेका तात्पर्य यह है कि ठीक इसी प्रकार यह संसार ईश्वरद्वारा निर्मित माया-मोहका चक्रव्यूह है। इस चक्रव्यूहमें घुसनेका हमें जन्मजात ज्ञान है और इस चक्रव्यूहमें हम घुसते चले जाते हैं, किंतु अपनी अज्ञानतावश निकल नहीं पाते और अन्ततः इसीमें गल-पचकर अपने कर्मोंके फलस्वरूप नाना योनियोंमें भटकते रहते हैं, जो सभी जानते हैं।

हमारे धर्मशास्त्रोंका एक स्वरसे उद्‌घोष है कि हमारा जन्म इस संसारमें ही हुआ है, संसारमें ही हमें रहना है; किंतु संसारमें रहनेकी क्या कला है—इसीकी पहली सिखावन हमें दी जाती है। किंतु दुःख है कि हम इसको समझ नहीं पाते। हमारे शास्त्र बतलाते हैं कि संसारमें रहनेके साथ-साथ जो पहला पाठ हमें सीखना है, वह है—सांसारिक वस्तुओंका त्याग, सांसारिक ऐश्वर्योंका त्याग। ईशोपनिषद्‌का प्रथम मन्त्र है—

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम्॥

इस मन्त्रका अर्थ यह है कि इस अखिल ब्रह्माण्डमें (जगत्याम्) जो कुछ भी (यत् किंच) जड-चेतनरूप वस्तु (जगत्) है, वह (इदम्) सब (सर्वम्) ईश्वरके द्वारा (ईशा) व्याप्त (वास्यम्) है। उस ईश्वरको साथ रखते हुए (तेन) त्यागपूर्वक (त्यक्तेन) सांसारिक वस्तुओंको भोगते रहो (भुञ्जीथाः), उनमें आसक्त मत हो (मा गृधः)। भोग्य पदार्थ (धनम्) किसीके नहीं हैं (कस्यस्विद्)।

इस मन्त्रके द्वारा भगवान्‌का हमें आदेश है कि इस संसारमें जो कुछ भी हम देख और सुन रहे हैं, उन सबके नियन्ता सर्वाधार सर्वशक्तिमान् भगवान् हैं, जिनसे यह सारा जगत् परिपूर्ण है। इस जगत्‌का कोई भी अंश उनसे खाली नहीं है। उन भगवान्‌का सदा-सर्वदा स्मरण करते हुए त्याग-भावसे ही आसक्ति और ममताका त्याग करते

हुए प्रभुकी सेवाके लिये ही सांसारिक वस्तुओंको हमें व्यवहारमें लाना है, इसके विपरीत नहीं। किंतु हम इस उच्च आदर्शको एकदम भूल गये हैं। हमलोगोंके सभी आचरण इसके विपरीत हो रहे हैं। अपने आचरणमें त्यागको स्थान न देकर हम नित्य नवीन कामनाएँ करते रहते हैं। कामनाएँ अनन्त हैं और वे जबतक बनी रहती हैं, तबतक मनुष्यको शान्ति नहीं मिलती। एक कामना पूरी हुई कि दूसरी कामना मुँह बाये सामने उपस्थित हो जाती है। इस प्रकार कामनाओंका ताँता हमारे मनमें लगा रहता है। मनुस्मृतिमें मनुजीने कहा है—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते॥
(२।९४)

'अग्निमें घी डालनेसे अग्नि बढ़ती ही जाती है, बुझती नहीं। इसी प्रकार भोगके सेवनसे काम शान्त नहीं होता, अपितु बढ़ता ही है।' इसीकी यथार्थताको समझते हुए भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें निष्काम कर्मयोगकी महत्तापर बल दिया है। जब संसारमें रहना ही है और यहाँ रहकर अपने-अपने निर्धारित कर्मोंको करना ही है, तब उनके सुन्दर सम्पादनके लिये कर्मयोगसे बढ़कर कोई दूसरा आदर्श ही नहीं है। कामनाएँ किसकी पूर्ण हुई हैं ? यह सभी जानते हैं कि श्रीरामरूपमें भगवान् विष्णुका अवतार महाराज दशरथके यहाँ हुआ था। दशरथजी श्रीरामको राजगद्दी देना चाहते थे; किंतु उनकी यह इच्छा पूर्ण नहीं हुई। यह कामना उनकी अपूर्ण ही रही, अपितु इस कामनाकी अपूर्तिसे महाराज दशरथकी मृत्यु भी हो गयी। श्रीराम सर्वसमर्थ होकर भी महाराज दशरथकी इस इच्छाको पूर्ण नहीं कर सके, तब हम अकिंचन मानवोंकी इच्छाकी पूर्ति क्या सम्भव है ? अतः इच्छाओंके महल-पर-महल बनानेसे क्या लाभ ? न हम स्वयं किसी देव-विशेषके अवतार हैं और न श्रीराम-जैसे अवतार हमारे सामने विद्यमान हैं ! अतएव व्यर्थकी कामनाओंका त्याग करके सर्वथा निष्काम भावसे कर्म करना ही हमलोगोंके लिये श्रेयस्कर है। संत तुलसीदास कहते हैं—

सब तजि तुम्हहिं रहइ उर लाई। तेहि के हृदयँ रहहु रघुराई॥
सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरें धनु बाना॥
करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि कें उर डेरा॥
(मानस २। १३०। ३-४)

'सांसारिक सभी वासनाओंको त्यागकर भगवान्‌को सतत हृदयमें धारण करना चाहिये। जिसे स्वर्ग, नरक या मोक्षकी चिन्ता नहीं है, जिसका सब जगह समभाव है, जो सभी अवस्थाओंको भगवान्‌की कृपा समझकर उनमें संतोष मानता है और मन-वचन-कर्मसे भगवान्‌की सेवामें तत्पर है, उसीके हृदयमें भगवान्‌का वास होता है।'

रामायण हमारे लिये अनेक शिक्षाओंका भंडार है। त्यागकी मूर्तिके रूपमें जो इसमें भरतजीका चरित्र चित्रित है, वह हमारे लिये आदर्श है। श्रीरामजी वनको चले गये हैं और भरतजी सारी सम्पत्तिको त्यागकर श्रीरामजीको वापस बुलानेके लिये सकल समाजके साथ वनको जा रहे हैं। रास्तेमें उनकी दशा देखकर लोग आश्चर्यचकित हो जाते हैं और सोचने लगते हैं कि भरतका कैसा त्याग है। सभी उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं और कहते हैं कि भरत-जैसा आदर्श चरित्रवान् इस धरातलपर मिलना असम्भव है। उन भरतजीकी यात्राके आगे श्रीरामकी वन-यात्रा भी फीकी पड़ जाती है। भरतजी अपनी यात्राके क्रममें प्रयागस्थित भरद्वाज मुनिके आश्रममें पहुँच रहे हैं। मुनिजी भी अपना उत्तरदायित्व समझकर भरतजीकी जैसी अगवानी कर रहे हैं, उसे देखकर भरतजी भी सहम रहे हैं। निर्जन स्थानमें एक आश्रमवासी मुनि कितनी सुख-सामग्री जुटा सकते हैं ! परंतु जब वहाँ उनका ऐश्वर्य प्रकट हुआ, उसको देखकर संसारभरकी सम्पदा भी लघु लगती थी। उस समय कितना त्यागमय हमारे संत-महात्माओंका जीवन था। फिर भी समय-समयपर परोपकारमें रत उन संत-महात्माओंद्वारा सम्मान्य अतिथियोंकी सुख-सुविधाका पूरा आयोजन रहता था। इसी प्रकार राजाओंके राज्यमें भी संत-महात्माओंकी सुख-सुविधाकी पूरी व्यवस्था रहती थी। किंतु उसमें कहीं भी उनकी आसक्ति नहीं होती थी और उनका जीवन पूर्ण त्यागमय होता था। त्याग ही अपने-अपने क्षेत्रमें राजाओं और संतोंका आदर्श था। इस त्यागके माध्यमसे ही संतों और राजाओंके जीवनकी तुलना होती थी और दोनोंका आदर्श एक ही प्रकारका समझा जाता था।

जिन-जिन सिद्धियोंकी प्राप्तिके लिये योगीलोग योग किया करते थे, उन-उन सिद्धियोंकी प्राप्तिके लिये राजालोग भी अपना राज्य त्यागकर अन्तमें वैराग्य धारण करते थे। यह सब त्यागकी महत्ता थी और सुख-सुविधा एवं ऐश्वर्य-

सम्पदाके मोह-माया और दलदलमें न फँसकर निष्काम जीवन व्यतीत करना ही सबके जीवनका आदर्श था।

जीवनका यह आदर्श, चाहे कोई राजा हो या संत-महात्मा, या सामान्य व्यक्ति, सभीके लिये भगवान्‌की आराधनाद्वारा ही प्राप्त हो सकता है और वह आराधना निष्काम होनी चाहिये, किसी फलकी चाहसे या आसक्ति-पूर्वक नहीं होनी चाहिये।

अनासक्ति एवं त्यागकी शिक्षा यदि बालकोंको शैशवावस्थासे ही दी जाय, तभी देशका कल्याण हो सकता है। इस प्रकारकी शिक्षाका कुछ संकेत प्राचीन भारतमें मिलता है, जहाँ रानी मदालसा पलनेपर झुलाते हुए अपने बच्चोंको कहा करतीं—

'शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि
संसारमायापरिवर्जितोऽसि।'

'ऐ बच्चे! तुम शुद्ध, बुद्ध और निरञ्जन हो; सांसारिक माया-मोह तुम्हें छू भी नहीं सकते।' पलनेमें झूलते हुए बच्चोंके अंदर इस प्रकारके संस्कार आरम्भसे ही डाले जाते थे, तभी तो उस समय भारतदेश उन्नतिके शिखरपर पहुँच सका था। इसके विपरीत आज हमारे देशवासी बचपनसे ही नौकरीकी तलाश या पैसा कमानेकी धुनमें लग जाते हैं और उसका परिणाम परिवार-परिवारमें परस्पर कलह एवं मार-काटके रूपमें देखा जाता है, जो देशके लिये एक समस्या हो गयी है। देशमें फैलती हुई बेरोजगारी, चोरी, घूसखोरी, बेईमानी, मामले-मुकदमे इत्यादि इस त्यागके आदर्शकी कमीके ही कारण हैं।

अतएव जीवनमें त्यागके आदर्शको, जहाँतक सम्भव हो, अपनाना चाहिये। तभी हमारा कल्याण होगा, अन्यथा विनाश निश्चित है।

(प्रेषक—श्रीरामकृष्णप्रसादजी ऐडवोकेट)

एक महात्माका प्रसाद

प्रभु-विश्वासी साधकके जीवनमें अभावका अभाव सदाके लिये स्वतः ही हो जाता है—यह अनुभवसिद्ध है। इस सत्यमें अविचल आस्था अनिवार्य है। शरीरके रहने-न-रहनेसे विश्वासी साधकके जीवनमें कोई लाभ-हानिकी बात ही नहीं है। प्रभु-विश्वास कल्पतरु है, प्रभु-प्रेमकी प्राप्तिका अचूक उपाय है। जिसने प्रभु-विश्वास पा लिया, उसने सब कुछ पा लिया। प्रभु-विश्वासको अपनाते ही अन्य विश्वास स्वतः नष्ट हो जाता है। प्रभु-विश्वासीको अपने लिये कुछ भी करना शेष नहीं रहता, कारण कि प्रभु-विश्वास अन्य सम्बन्ध तथा अन्य चिन्तनका अन्त कर देता है। इतना ही नहीं, विश्वासी साधकके लिये प्रभु-विश्वास ही गुरु-तत्त्व है। यह रहस्य वे ही साधक जान पाते हैं, जिन्होंने गुरु-वाक्यपर प्रभु-विश्वासको अपनाया है। करने और होनेके रहस्यका अनुभव करो। करना है केवल प्रभु-विश्वास और हो रही है अनन्तकी अनुपम लीला। लीला देखो, पर लीलामयकी महिमाको अपनाते रहो। जिन्होंने महामहिमकी महिमाको अपनाया, वे सदाके लिये अभय हो गये, विश्राम पा गये और प्रीति-सम्पन्न होकर प्रेमास्पदको रस देनेमें तत्पर हो गये। यह उन्हींकी महिमा है। उनके साथ आत्मीयताका सम्बन्ध जोड़ लेनेपर किसी औरकी आस्था ही नहीं रह जाती। प्रेमास्पदसे भिन्नकी आस्था ही अभावको जन्म देती है। अतः यह स्वीकार करो कि सूर्यरूपमें वे ही हैं, सभी अवस्थाओंमें वे ही हैं, सभी परिस्थितियोंमें वे ही हैं; वस्तु, व्यक्ति, देश-कालमें वे ही हैं; तुम हो उनकी अगाध प्रियता। प्रियतासे ही उन्हें रस मिलता है। सद्गुरु-वाक्यके आधारपर मिली हुई आत्मीयतासे ही प्रियता उदित होती है। तुम्हारे प्रेमास्पद सदैव तुम्हींमें हैं; तुम्हें देख रहे हैं। वे कभी भी तुम्हें अपनी आँखसे ओझल नहीं करते। तुम भी अपनी दृष्टिमें किसी औरको स्वीकार न करो। बस, फिर कुछ करना शेष नहीं है; सर्वदा अभय रहो, निश्चिन्त रहो, शान्त रहो, प्रसन्न रहो।

× × × ×

साधक वही है, जो सदैव सजगतापूर्वक अपनी ओर देखता है और आत्मनिरीक्षणद्वारा भूलरहित होनेका अथक प्रयास करता है; जो अपना समय संयम, सार्थक चिन्तन तथा सेवामें ही व्यतीत करता है, जो साध्यकी उपलब्धिके लिये सतत आकुल तथा व्याकुल रहता है और जो प्रत्येक कार्यके आदि और अन्तमें शान्त होकर प्रियकी स्मृतिको जगाता है, अर्थात् स्मृति ही जिसका जीवन हो जाती है । कार्य तो वह केवल मिले हुए बलके सदुपयोगके लिये करता है अथवा समाजके ऋणसे मुक्त होनेके लिये करता है । साध्यकी अखण्ड स्मृतिमें ही जीवन है । स्मृति जगानेके लिये साधकको सब ओरसे विमुख होकर जीवनमें ही मृत्युका अनुभव करना है, अर्थात् शरीर, इन्द्रिय, प्राण, मन-बुद्धि आदिसे लेशमात्र भी सम्बन्ध नहीं रखना है; तभी नित्य सम्बन्धकी स्मृति उदित होती है । साधक महानुभाव स्वयं विचार करें कि उनके जीवनमें सजगताका कितना स्थान है । सजग होनेमें ही जीवन है ।

× × ×

श्रद्धा-विश्वासके योग्य एकमात्र सर्वसमर्थ प्रभु ही हैं । वे भले ही तुम्हारी प्रार्थना नहीं सुनते, पर और कोई दरवाजा भी तो नहीं है । निर्बल साधकके लिये शरणागतिसे भिन्न और कोई अचूक उपाय नहीं है । शरणागति सफलताकी कुंजी है—ऐसा अनेक साधकोंका अनुभव है । जब साधक अपनेपर विश्वास नहीं कर पाता, तब उसे सर्वसमर्थ प्रभुसे भिन्न किसी अन्य व्यक्तिपर कभी विश्वास नहीं करना चाहिये, अर्थात् समस्त विश्वसे निराश होकर एकमात्र सर्वसमर्थ प्रभुकी ही महिमाको अपनाकर उन्हें समर्पित हो जाना चाहिये । जब साधकको तन-मन आदिकी दशा शोचनीय प्रतीत हो, तब उसे अपनेको अपने ही द्वारा सर्वसमर्थके हाथों समर्पितकर निश्चिन्त तथा निर्भय हो जाना चाहिये । अहंकृतिके रहते हुए कभी किसीको जीवन नहीं मिला; कारण कि अहंकृति शरीरसे असङ्ग नहीं होने देती । असङ्गताके विना जन्म-जन्मान्तरके संस्कारोंका नाश नहीं होता और उसके विना जड-चिद्-ग्रन्थि नहीं खुलती, अर्थात् देहातीत, अविनाशी जीवनसे एकता नहीं होती । अपने सभी संकल्प सर्वसमर्थ प्रभुके संकल्पमें विलीन करने हैं । इसके लिये बार-बार उनसे कहो— "प्यारे ! तेरी इच्छा पूर्ण हो । तुम मेरे भोक्ता हो । मैं तुम्हारी भोग-सामग्रीसे भिन्न कुछ नहीं हूँ । इस 'अहम्' और 'मम' को खा लो और अपनी आत्मीयता प्रदानकर अपने प्रेमसे जीवन भर दो । तुम्हारी प्रियतासे भिन्न कुछ न रह जाय । तुमसे भिन्न और किसीका भास ही न रह जाय, तुम्हारी सत्तासे भिन्न किसी अन्यका अस्तित्व ही नहीं है । तुम्हारी आँखसे मैं ओझल नहीं हूँ, तुम्हारे ज्ञानसे मैं बाहर नहीं हूँ । तुम्हारे देखते हुए, जानते हुए मुझ प्रमादीका प्रमाद जीवित रहे—यह तुम्हारी कृपा-दृष्टि कैसे सहन कर सकती है ? मेरी दुर्दशासे आप स्वयं व्यथित होते होंगे, ऐसा मेरा अविचल विश्वास है । क्या मेरा जीवन आपको व्यथित करनेके लिये ही है ? आपके भक्त तो सदैव आपको रस देनेकी बात सोचते हैं और मैं आपको एकमात्र दुःख देनेके लिये ही जीवित हूँ । आप अपनी ओर देखें और अपनी अहैतुकी कृपासे प्रेरित होकर इस प्रमादीके प्रमादका अन्त कर अपनी महिमासे जीवन भर दें । आपकी महिमा ही मेरा जीवन हो, अन्य विश्वास तथा अन्य सम्बन्धकी गन्ध भी न रह जाय । मेरे किये हुए विश्वासमें विकल्प हो सकता है, पर आपका दिया हुआ विश्वास ही निर्विकल्प होगा ।"

माँगकी जागृति ही वास्तविक उपासना है । माँगसे निराश होना भारी भूल है । माँगकी पूर्ति होती है, यह अनन्तका मङ्गलमय विधान है । माँगकी पूर्ति तथा साध्यकी उपलब्धि एक ही बात है ।

× × ×

जब साधक अपने साध्यको अपनेसे भिन्नमें खोजता है, तब उसे प्रेमास्पदके पानेमें देर होती है; किंतु जब अपनेमें ही प्रियतमको स्वीकार करता है, तब उसे वर्तमानकालमें ही अपने प्रेमास्पदका साक्षात्कार हो जाता है और वह सदाके लिये उसकी प्रीति होकर उसको रस प्रदान करता है। जिससे देश-कालकी दूरी है ही नहीं; वह अपनेमें ही है। जो अपनेमें ही है, उसे पानेके लिये अपनेको समर्पित करना होगा, जो एकमात्र आस्था, श्रद्धा और विश्वाससे ही सम्भव है। श्रद्धा-पथके साधकमें किसी अन्यकी आस्थाकी गन्ध ही नहीं रहती। अन्य विश्वास तथा सम्बन्धने ही प्रेमियोंको प्रेमास्पदसे विमुख किया है। प्रेमास्पदकी विस्मृति हुई है, उनसे दूरी नहीं हुई। इस रहस्यको कोई बिरले ही जानते तथा मानते हैं। प्रेमास्पदकी अहैतुकी कृपाका आश्रय लेते ही यह रहस्य स्पष्ट हो जाता है। हम किसी औरके नहीं हैं, कोई और हमारा नहीं है—यह अनुभव हमें आस्था, श्रद्धा एवं विश्वास प्रदान करता है। यदि कोई और हमारा होता तो हमारे बिना वह किसी प्रकार भी नहीं रहता। पर क्या बतायें, जिस शरीरको हम अनेक जन्मोंतक अपना कहते रहे, वह भी अपना न हो सका। अतएव जो सदैव हैं, वे ही अपने हैं। अपनेमें अपनी प्रियता सहज तथा स्वाभाविक है; यही सच्चा भजन है। उनके नाते सभीको आदर देना है, सभीकी यथाशक्ति सेवा करनी है—यही शरणागतकी पूजा है। उनकी महिमा ही अपना बल है, उनका आश्रय ही अपना जीवन है।

× × ×

प्रेम प्रेमपात्र करते हैं, प्रेमी नहीं; क्योंकि प्रेम वह कर सकता है, जिसको अपने लिये कोई भी आवश्यकता न हो।

प्रेमी केवल प्रेमपात्रसे अपनत्व करता है। अपनत्व हो जानेपर और किसी प्रकारकी योग्यता सम्पादन करना शेष नहीं रहता। अपनत्व हो जानेपर प्रेमीको प्रेमपात्र प्यार करते हैं।

प्रेमपात्रके प्यारके सिवा और किसीका प्यार स्वीकार न करना प्रेमीका परम कर्तव्य है। जबतक प्रेमीको प्रेमपात्रका प्रेम नहीं मिलता, तबतक प्रेमी असह्य व्याकुलताका अनुभव करता है।

पवित्र व्याकुलता प्रेमीका स्वरूप है। उस व्याकुलता-को अखण्ड आनन्दमें विलीन कर देना प्रेमपात्रका प्रेम है।

पूर्ण अपनत्व करनेके लिये माने हुए अस्वाभाविक संयोगमें—संयोग-कालमें ही—वियोग अनुभव करना अनिवार्य है; क्योंकि सद्भावपूर्वक पूर्ण अपनत्व दो विरोधी सत्ताओंमें नहीं हो सकता।

प्रेमपात्र आनेके लिये प्रतीक्षा कर रहे हैं; वे केवल स्थान न मिलनेके कारण नहीं आ पाते। प्रेमीसे अधिक प्रेमपात्रको प्रेमीकी आवश्यकता है; क्योंकि प्रेमीके सिवा और कहीं संसारमें प्रेमपात्रको स्थान नहीं मिलता।

भजन बिन चोला है बेकाम !

भजन बिन चोला है बेकाम !
मल अरु मूत्र भरौ नर-तन सब, है निष्फल यह चाम ॥
बिन हरिभजन पवित्र न ह्वैहै, धोवौ आठौ जाम।
काया छोड़ हंस उड़ि जैहैं, परौ रहै धन-धाम ॥
अपनौ सुत मुख लूघर दैहैं, सोच लेहु परिनाम।
'रूपकुँवरि' सब छोड़ बसहु व्रज, भजियै स्यामा-स्याम ॥

भगवान् श्रीकृष्णके सौन्दर्य-माधुर्यका स्मरण*

गीताके अनुसार यह सिद्ध है कि ईश्वर अपनी इच्छासे अपनी प्रकृतिमें अधिष्ठित होकर जब चाहें तभी लीलासे अवतार धारण कर सकते हैं—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥
(गीता ४। ६)

'मैं अजन्मा, अव्ययात्मा और सर्वभूतोंका ईश्वर रहता हुआ ही अपनी प्रकृतिको (अपने स्वभावको) स्वीकार करके अपनी मायासे (योगमायाको साथ लेकर) उत्पन्न—उत्तम रीतिसे प्रकट होता हूँ (सम्भवामि)।'

संसारमें भगवान्‌के अनेक अवतार हो चुके हैं, अनेक रूपोंमें प्रकट होकर उन लीलामय नाथने अनेक लीलाएँ की हैं—'बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि।' कला और अंशावतारोंमें कई क्षीरसागरशायी भगवान् विष्णुके होते हैं, कुछ भगवान् शिवके होते हैं, कुछ सच्चिदानन्दमयी योगशक्तिदेवीके होते हैं; किसीमें कम अंश रहते हैं, किसीमें अधिक। अर्थात् किसी लीलामें भगवान्‌की शक्ति-सत्ता न्यून प्रकट होती हैं, किसीमें अधिक। इसीलिये सूतजी महाराजने मुनियोंसे कहा है—

'एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।'
(श्रीमद्भा० १। ३। २८)

मीन-कूर्मादि अवतार सब भगवान्‌के अंश हैं, कोई कला है, कोई आवेश है; परंतु श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं।

वास्तवमें भगवान् श्रीकृष्ण सब प्रकारसे पूर्ण हैं। उनमें सभी पूर्व और आगामी अवतारोंका पूर्ण समावेश है। भगवान् श्रीकृष्ण अनन्त ऐश्वर्य, अनन्त बल, अनन्त यश, अनन्त श्री, अनन्त ज्ञान और अनन्त वैराग्यकी जीवन्त मूर्ति हैं। प्रारम्भसे लेकर लीलावसानपर्यन्त उनके सम्पूर्ण कार्य ही अलौकिक—चमत्कारपूर्ण हैं। उनमें सभी शक्तियाँ प्रकट हैं। किंतु व्रजलीलामें उनका सौन्दर्य-माधुर्य ही विशेषरूपमें लुभानेवाला था; वहाँ शक्तिका तो विशेष अवसरोंपर ही प्राकट्य हुआ है। यहाँ हम उनके सौन्दर्य-माधुर्यका थोड़ा-सा स्मरण करते हैं।

श्रीकृष्ण ऐश्वर्य-माधुर्यके अनन्तानन्त निधि हैं, पर उनके भी दो रूप हैं—'ऐश्वर' और 'ब्राह्म'। वे ऐश्वररूपसे असुरोंका संहार, लोकधर्मका संस्थापन, साधु-परित्राण, दुष्टदलन आदि लीलाकार्य करते हैं और 'ब्राह्म'-स्वरूपसे माधुर्यका विस्तार करते हैं। उनके रूप-गुण-सौन्दर्य-माधुर्य इतने दिव्य, चमत्कार-पूर्ण तथा नित्यनव रूपमें प्रकट हैं कि वे निर्ग्रन्थ ऋषि-मुनियों, देवताओं, समस्त लक्ष्मियों—यहाँतक कि भगवत्स्वरूपोंको भी आकर्षित किये रहते हैं। दूसरोंकी बात तो दूर रही, उनकी वह परममधुर अनिर्वचनीय सुन्दरतारूप आकर्षिणी शक्ति स्वयं उन्हींके चित्तको आकर्षित और प्रलुब्ध कर देती है—

अपरिकलितपूर्वः कश्चमत्कारकारी
स्फुरति मम गरीयानेष माधुर्यपूरः।
अयमहमपि हन्त प्रेक्ष्य यं लुब्धचेताः
सरभसमुपभोक्तुं कामये राधिकेव ॥
(ललितमाधव)

किसी मणिकी दीवालमें या दर्पणमें प्रतिबिम्बित अपनी रूप-माधुरीको देखकर श्रीकृष्ण आश्चर्यके साथ कहते हैं—'अहो! इस माधुरीका तो इससे पहले मैंने कभी अनुभव किया ही नहीं। मेरी यह माधुर्यराशि कितनी चमत्कार-जनक है, कितनी महान् श्रेष्ठ है! इसे देखकर तो मेरा अपना चित्त भी लुब्ध हो गया है। (श्रीराधिका इसे देखते-देखते कभी थकतीं ही नहीं, निर्निमेष नेत्रोंसे परम उत्सुकताके साथ नित्य-निरन्तर देखा ही करती हैं।

* नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके लेखोंसे संकलित।

इससे अनुमान होता है, वे ही इस रूप-माधुरीका पूरा रसास्वादन करती हैं ।) अतएव मैं चाहता हूँ कि मैं भी श्रीराधिकाजीकी भाँति ही परम उत्सुकताके साथ इसका उपभोग करूँ ।'

अखिलरसामृतसिन्धु श्रीकृष्णके माधुर्यका वर्णन करनेके लिये भाषामें न शब्द है, न शक्ति ही; इसको तो जिसने देखा है, वही जानता है, पर वह भी बता नहीं सकता; क्योंकि उसका हृदय ही सदाके लिये इस रूप-माधुरीके द्वारा अपहरण कर लिया जाता है ।

ईसाई भक्त माइकेल मधुसूदनदत्तने कहा है—

जिसने देखा कभी नयनभर मोहन-रूप विना बाधा ।
वही जान सकता है क्योंकर कुल-कलङ्किनी है राधा ॥

वह रूपमाधुरी सर्वस्व हरण कर लेती है क्षणभरमें । परमप्रेमी भक्त लीलाशुक श्रीबिल्वमङ्गल गाते हैं—

मधुरं मधुरं वपुरस्य विभोर्मधुरं मधुरं वदनं मधुरम् ।
मधुगन्धि मृदुस्मितमेतदहो मधुरं मधुरं मधुरं मधुरम् ॥

प्रातःस्मरणीय श्रीवल्लभाचार्य श्रीकृष्णमें सर्वत्र मधुरता देखते हुए—

अधरं मधुरं वदनं मधुरं
नयनं मधुरं हसितं मधुरम् ।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥
वचनं मधुरं चरितं मधुरं
वसनं मधुरं वलितं मधुरम् ।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥

—इत्यादि शब्दोंसे उनकी सर्वाङ्गीण मधुरताका संकेत करते हैं । महाप्रभु चैतन्यके द्वारा कथित शब्दोंका कुछ भाव है—

कृष्ण-अङ्ग-लावण्य मधुरसे भी सुमधुरतम ।
उसमें श्रीमुख-चन्द्र परम सुषमामय अनुपम ॥
मधुरापेक्षा मधुर, मधुरतम उससे भी अति ।
श्रीमुखकी मधु-सुधामयी ज्योत्स्नामयि सुस्मिति ॥
इस ज्योत्स्ना-स्मिति मधुरका एक-एक कण अति मधुर ।
होकर त्रिभुवन-व्याप्त जो बना रहा सबको मधुर ॥

श्रीकृष्णकी ज्योत्स्नामयी मधुर मुसकानके कणमात्रसे ही जगत्‌में जहाँ-तहाँ माधुर्यका विस्तार होता है; इनका मन्दस्मित ही जगत्‌में सम्पूर्ण आनन्द-विधान करता है, अन्यथा जगत् तो दुःखमय है ही ।

× × ×

श्रीकृष्णका द्विभुज रूप कितना सुन्दर तथा मधुर है, इसे कोई बता नहीं सकता । एक महात्माने कहा है कि 'श्रीकृष्णके इस मायातीत या गुणातीत नित्यरूपका वर्णन करनेकी शक्ति चौदह भुवनोंमें किसीमें भी है, ऐसा मुझे विश्वास नहीं है ।' शास्त्रोंमें जो वर्णन है, वह तो ध्यानकी सुकरताके लिये उनके रूपका आभास-मात्र है । कर्दम ऋषिने जो रूप देखा था, वह चतुर्भुज था । ध्रुव, अर्जुन तथा अन्यान्य भक्तोंने भी उस रूपके दर्शन किये थे । यद्यपि ये सभी एकरूप नहीं थे, तथापि थे एक ही । परंतु ये उनकी ऐश्वर्यभूमिके रूप हैं । माधुर्यक्षेत्रमें उनका द्विभुज रूप ही प्रकट होता है; वह 'स्वजनमोहन ही नहीं, स्वमन-मोहन' भी है । वह नित्य नव-किशोर नटवर विग्रह है । गोपवेष है । हाथमें मधुर मुरली लिये कदम्बके नीचे विराजित है । श्याममेघके सदृश नीलाभ श्यामवर्ण है । वे पीत वसन पहने हैं । गलेमें गुञ्जाहार और वनमाला सुशोभित हैं, वदनपर नित्य मधुर मोहन मन्दस्मित है, चारों ओर गोपबालक तथा गोपदेवियाँ उन्हें घेरे हैं । किसकी क्षमता है, जो इस अनन्त सौन्दर्य-माधुर्यको भाषाके द्वारा व्यक्त कर सके ।

व्रजमें प्रकट भगवान्‌के स्वरूप-सौन्दर्यपर उनकी वात्सल्यमयी माता तथा मातृस्थानीया गोपमाताएँ, उनकी परम प्रेयसी गोपरमणियाँ और उनके सब प्रकारके सखागण तो अपने-अपने भावानुसार मुग्ध थे ही—उनकी मुग्धताके तो असंख्य उदाहरण हैं; संसारमें कोई भी प्राणी ऐसा नहीं था, जिसकी दृष्टि

एक बार उनके सौन्दर्यपर पड़ी हो और वह अपनेको भूल न गया हो। नामकरण-संस्कार करानेके लिये आचार्य गर्गमुनि पधारते हैं और शिशु श्रीकृष्णके अश्रुतपूर्व दिव्य रूप-सौन्दर्यको देख विचित्र दशाको प्राप्त होकर अपने आपको भूल जाते और कहने लगते हैं—

धैर्यं धिनोति बत कम्पयते शरीरं
रोमाञ्चयत्यति विलोपयते मतिं च।
हन्तास्य नामकरणाय समागतोऽह-
मालोपितं पुनरनेन ममैव नाम॥

'(मेरा) धैर्य छूट रहा है, शरीर कम्पित और रोमाञ्चित हो रहा है तथा बुद्धि भी लोप हुई जा रही है। आश्चर्य! जिनके नामकरणके लिये मैं यहाँ आया, उन्होंने स्वयं मेरा नाम मिटा दिया।' नाम-रूप मिटनेपर ही तो मुक्ति होती है। सचमुच जिस भाग्यवान्को उनके रूप-सौन्दर्यकी झाँकी हो जाती है, उसके लिये फिर नाम-रूपात्मक संसार कैसे रह सकता है।

भक्त बिल्वमङ्गलको प्रथम बार जब श्रीश्यामसुन्दरके रूप-सौन्दर्यकी जरा-सी झाँकी हुई, तभी वे सदाके लिये अपने मनको लुटा बैठे। वे कहते हैं—

शैवा वयं न खलु तत्र विचारणीयं
पञ्चाक्षरीजपपरा नितरां तथापि।
चेतो मदीयमतसीकुसुमावभासं
स्मेराननं स्मरति गोपवधूकिशोरम्॥

'मैं शैव हूँ, इस सम्बन्धमें तो कुछ विचार करनेकी आवश्यकता ही नहीं है; मैं सदा-सर्वदा 'नमः शिवाय'—यह पञ्चाक्षर मन्त्र भी जपता रहता हूँ। इतना सब होते हुए भी मेरा मन तो अब निरन्तर अतसी-कुसुम-सुन्दर गोपवधू-किशोर श्रीश्यामसुन्दरके मधुर मुसकानभरे मुखका ही स्मरण करता रहता है।'

अद्वैतनिष्ठसम्राट् अद्वैतसिद्धिके रचयिता श्रीमधुसूदन स्वामीने अपनी दशाका बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है—

अद्वैतवीथीपथिकैरुपास्याः
स्वाराज्यसिंहासनलब्धदीक्षाः।
शठेन केनापि वयं हठेन
दासीकृता गोपवधूविटेन॥

अद्वैतपथसे स्वाराज्य-सिंहासनपर आरूढ़ हुए ऐसे-ऐसे ज्ञानी महारथियोंको भी यह शठ गोपीवल्लभ हठपूर्वक अपना दास बना लेता है, फिर दूसरा कोई तत्त्व उन्हें सूझता ही नहीं। इसीसे वे कह उठते हैं—

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्
पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात्।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्
कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने॥

'जिनके दोनों हाथ बाँसुरीसे शोभा पा रहे हैं, श्रीअङ्गोंकी कान्ति नूतन मेघके समान श्याम है, साँवले अङ्गपर पीताम्बर सुशोभित हो रहा है, लाल-लाल ओठ पके हुए बिम्बफलकी सुषमाको छीने लेते हैं, सुन्दर मुख पूर्णिमाके चन्द्रमाको भी लज्जित कर रहा है और नेत्र प्रफुल्ल कमलके समान मनोहर प्रतीत होते हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णके सिवा दूसरा कोई भी परम तत्त्व है—यह मैं नहीं जानता।'

पण्डितराज जगन्नाथ अपने चित्तसे कहते हैं—

रे चेतः कथयामि ते हितमिदं वृन्दावने चारयन्
वृन्दं कोऽपि गवां नवाम्बुदनिभो बन्धुर्न कार्यस्त्वया।
सौन्दर्यामृतमुद्गिरद्भिरभितः सम्मोह्य मन्दस्मितै-
रेष त्वां तव वल्लभांश्च विषयानाशु क्षयं नेष्यति॥

'अरे चित्त! सावधान रहना। तू वृन्दावनमें गौएँ चरानेवाले, नवीन नील-नीरदके समान नीलश्याम कान्तिवाले उस अनिर्वचनीय पुरुषको अपना बन्धु मत बना लेना। कहीं बना लिया तो वह अपनी सौन्दर्य-सुधावर्षिणी मन्द मुसकानसे तुझे मोहित कर लेगा और तेरे समस्त प्रिय विषयोंको तुरंत नष्ट कर डालेगा।'

सच है, उनकी सौन्दर्य-सुधामयी मुसकानके सामने विषय-विष कैसे रह सकता है!

औरोंकी तो बात ही क्या, बूढ़े व्यास एवं भीष्म-सरीखे

महापुरुष तथा नारदादि ऋषि-मुनि भी उनके स्वरूप-सौन्दर्यको टकटकी लगाकर देखते ही रह जाते थे—

सुर-मुनि मनुज-दनुज, पसु-पंछी,
को अस जो जग जायो।
लखि कै छवि-माधुरी ललन की,
सुधि-बुधि नहिं बिसरायो॥
जोगी, परम तपस्वी ग्यानी,
जिन निज-निज मन मार्‍यौ।
तनिक निरखि मुसक्यान मधुर तिन
बरबस जीवन वार्‍यौ॥
बिसर्‍यौ सहज विराग, ब्रह्मसुख,
थकित बिलोचन ठाढ़े।
तनु पुलकित, दृग प्रीति-सलिल,
द्रुत ह्वै, प्रेम-रस-बाढ़े॥

हमारे श्रीकृष्ण तो ऐसे हैं कि उनकी ओर जिसकी दृष्टि गयी, वही अपनी सुध-बुध भूलकर लट्टू हो गया—अपने सम्प्रदायमें रहते हुए ही श्रीकृष्णका प्रेमी बन गया। ऐसे अनेकों कृष्णप्रेमी मुसल्मान महानुभाव हुए हैं और आज भी हैं। यूरोपियन बहुत-से भक्त-हृदय नर-नारी ऐसे हैं, जो श्रीकृष्णके चरणोंमें अपना सब कुछ न्योछावर कर प्रेमभिखारी बने हुए हैं। ऐसे वर्तमानकालके कई मुसल्मान, यूरोपियन भाग्यशाली नर-नारियोंसे मेरा परिचय है। भाग्यशाली श्रीकृष्ण-प्रेमी कुछ मुसल्मान महानुभावोंके उद्गार देखिये—

रहीमजी श्रीश्यामसुन्दरकी छबिको चित्तसे टाल ही नहीं सकते। वे गाते हैं—

कमल-दल नैननि की उनमानि।
बिसरत नाहिं मदनमोहन की
मंद-मंद मुसुकानि॥
दसनन की दुति चपलाहू ते
चारु चपल चमकानि।
बसुधा की बस करी मधुरता,
सुधा-पगी बतरानि॥
चढ़ी रहै चित हिय बिसाल की
मुकमाल लहरानि।
नृत्य समय पीतांबरकी वह
फहरि-फहरि फहरानि॥
अनुदिन श्रीवृंदावन ब्रज में
आवन जावन जानि।
छवि 'रहीम' चित तें न टरति है,
सकल स्याम की बानि॥

वाहिद श्रीनन्दनन्दनपर निरन्तर लगन रहनेकी शुभकामना करते हैं—

सुंदर सुजान पर,
मंद मुसुकान पर,
बाँसुरी की तान पर
ठौरन ठगी रहै।
मूरति बिसाल पर,
कंचन की माल पर,
खंजन-सी चाल पर
खौरन खगी रहै॥
भौंहें धनु मैन पर
लोने जुग नैन पर,
सुद्धरस बैन पर
'वाहिद' पगी रहै।
चंचल से तन पर,
साँवरे बदन पर,
नंद के नँदन पर
लगन लगी रहै॥

रसिक रसखानजी तो अपना मन चित-चोर नन्दनन्दनके हाथ गँवा बैठे हैं और वे पशु-पक्षी-पत्थर बनकर भी कन्हैयाके पास रहना चाहते हैं—

मोहन छवि रसखानि लखि, अब दृग अपने नाहिं।
ऐंचे आवत धनुष-से, छूटे रस-से जाहिं॥
या छवि पै रसखानि अब वारौं कोटि मनोज।
जाकी उपमा कविन नहिं पाई, रहे सु खोज॥
मोहन सुंदर स्याम कौ देख्यौ रूप अपार।
हिय-जिय-नैननि मैं बस्यौ वह ब्रजराजकुमार॥
मो मन-मानिक लै गयौ चितै चोर नँद-नंद।
अब बेमन मैं का करूँ परी फेर के फंद॥

× × × ×

मानुष हौं तौ वही रसखानि
बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जौ पसु हौं तौ कहा बस मेरौ,
चरौं नित नंद की धेनु मझारन॥
पाहन हौं तौ वही गिरि कौ,
जो धर्‍यौ कर छत्र पुरंदर धारन।
जो खग हौं तौ बसेरौ करौं मिलि
कालिंदि कूल कदंब की डारन॥

इतना ही नहीं, रसखानजी उस अनिवार्य मोहिनी शोभाकी महिमा गाते हुए पुकार-पुकारकर समस्त ब्रजजनोंको सावधान कर रहे हैं—

काननि दै अँगुरी रहिबो,
जबहीं मुरली-धुनि मंद बजैहै।
मोहिनि तानन सौं रसखानि,
अटा चढ़ि गो-धन गैहै तौ गैहै॥
टेरि कहौं सिगरे ब्रजलोगनि,
काल्हि कोऊ कितनौ समुझैहै।
माइ री वा मुख की मुसुकानि,
सम्हारी न जैहै, न जैहै, न जैहै॥

'नजीर' श्रीकृष्ण-कन्हैयाकी जय बोलते-बोलते नहीं थकते—

तारीफ करूँ मैं अब क्या-क्या
उस मुरली-धुन के बजैया की,
नित सेवा-कुंज फिरैया की
और बन-बन गऊ चरैया की।
गोपाल बिहारी बनवारी
दुख-हरन औ मेहर[1]-करैया की,
गिरधारी सुंदर स्याम-बरन और
पंदड़ जोगी भैया की॥
यह लीला है उस नंद-ललन
मनमोहन जसुमति-छैया की।
रस ध्यान सुनो, दंडौत करो,
जै बोलो कृष्ण-कन्हैया की॥

देवी ताज तो सब कुछ सहकर उनकी बनी रहना चाहती हैं—

१—कृपा।

सुनो दिलजानी[1], मेरे दिलकी कहानी तुम,
दस्त[2] ही बिकानी, बदनामी भी सहूँगी मैं।
देवपूजा ठानी, औ निवाज हू भुलानी,
तजे कलमा[3]-कुरान[4] साड़े गुनन गहूँगी मैं॥
साँवला, सलोना, सिरताज सिर कुल्लेदार[5],
तेरे नेह-दाग में निदाघ ह्वै दहूँगी मैं।
नंद के कुमार, कुरबान[6] तेरी सूरत पै,
तेरे नाल[7] प्यारे हिंदुवानी ह्वै रहूँगी मैं॥

ये भक्त तो हर शैमें उन्हींका नूर देखते हुए उनके कदमोंमें ही बसे रहना चाहते हैं—

जहाँ देखो वहाँ मौजूद
मेरा कृष्ण प्यारा है,
उसीका सब है जल्वा[8], जो
जहाँ[9] में आशकारा[10] है।
तेरा दम भरते हैं हिंदू,
अगर नाकूस[11] बजता है,
तुम्हींको शेख[12] ने प्यारी
अजाँ[13] देकर पुकारा है॥
न होते जल्वागर[14] तुम तो,
यह गिरजा[15] कबका गिर जाता,
निसारी[16] को भी तो आखिर
तुम्हारा ही सहारा है॥
तुम्हारा नूर[17] है हर शै[18] में,
कोहँ[19] से कोह तक प्यारे,
इसीसे कहके हरि-हर
तुमको हिंदूने पुकारा है।
गुनह[20] बख्शो[21], रसाई[22] दो,
बसा लो अपने कदमों[23] में,

१—हृदयके जीवन। २—हाथ। ३—इस्लामका मूलमन्त्र। ४—इस्लामका मुख्य धर्मग्रन्थ। ५—जुल्फोंवाला। ६—न्योछावर। ७—साथ। ८—प्रकाश। ९—जगत्। १०—व्यक्त। ११—शङ्ख। १२—बाँग देनेवाला मुल्ला। १३—नमाजके समय लोगोंको मसजिदमें बुलानेकी पुकार। १४—प्रकाशयुक्त। १५—ईसाइयोंका उपासनागृह। १६—कुरबानी, उत्सर्ग। १७—तेज। १८—वस्तु, पदार्थ। १९—पर्वत। २०—अपराध। २१—क्षमा करो। २२—प्राप्तिका साधन। २३—चरणोंमें।

बुरा है या भला है, जैसा
है, प्यारा तुम्हारा है ॥

हज़रत नफ़ीस खलीलीने तो कन्हैयाकी छविपर अपना दिल ही उड़ा दिया है—

कन्हैयाकी आँखें हिरन-सी नशीली।
कन्हैयाकी शोख़ी[24] कली-सी रसीली॥
कन्हैयाकी छवि दिल उड़ा लेनेवाली।
कन्हैयाकी सूरत लुभा लेनेवाली॥
कन्हैयाकी हर बातमें एक रस है।
कन्हैयाका दीदार सीमी[25] क़फ़स[26] है॥

ऐसे मुसल्मान श्रीकृष्ण-प्रेमियोंके भावोंपर मुग्ध होकर ही तो हिंदी-साहित्य-गगनके शरदिन्दु श्रीभारतेन्दुने कहा था—

'इन मुसलमान हरिजनन पै कोटिन हिंदू वारियै।'

पर ये हरिके जन मुसल्मान क्या करते, बेचारे लाचार थे। उस साँवरे-सलोनेकी छवि-माधुरीमें जादू ही ऐसा है—जिसने इस ओर भूले-भटके भी निहार लिया, वही लुट गया।

आइये, श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी-महोत्सवकी पावन वेलामें हम भी उस मदनमोहन श्रीश्यामसुन्दरके सौन्दर्य-माधुर्यकी लालसा हृदयमें जगायें और अन्तर्हृदयसे उनसे प्रार्थना करें—

मैं तुमको श्याम बुलाऊँ,
सादर घरमें पधराऊँ,
नयनोंसे स्वागत गाऊँ,
सरवस दे तुम्हें रिझाऊँ।

अँखियन-जल पैर धुलाऊँ,
हिय-झूले तुम्हें झुलाऊँ,
प्रेमामृत-रस नहलाऊँ,
भोजन रस-मधुर कराऊँ॥

हिय कोमल सेज सुलाऊँ,
सुरभित अति पवन डुलाऊँ,
कोमल कर चरन दबाऊँ,
छवि निरख-निरख सुख पाऊँ।

छन-छन मन मोद बढ़ाऊँ,
नाचूँ, गाऊँ, हरषाऊँ,
नख-सिखपर बलि-बलि जाऊँ,
मैं न्योछावर हो जाऊँ॥

* * *

मेरे जीवन-धन प्यारे! मैं कबसे तुम्हें बुलाऊँ।
आओ, नयनोंके तारे! मैं चरण-कमल लपटाऊँ॥
जसुमति मैयाके बारे! मैं माखन तुम्हें खिलाऊँ।
व्रजपतिके परम दुलारे! मैं सुललित लाड़ लड़ाऊँ॥
आओ, नयनोंके तारे० ॥

हे सखा प्राण-आधारे! मैं मनहर खेल खिलाऊँ।
ब्रज-जुवतिन प्राण-पिआरे! मैं हिय-रस तुम्हें पिलाऊँ॥
आओ, नयनोंके तारे० ॥

राधा-आराधनवारे ! मैं सरवस चरण चढ़ाऊँ।
अर्पित कर तन-मन सारे! मैं तुमपर बलि-बलि जाऊँ॥
आओ, नयनोंके तारे० ॥

तुम रहो प्रेम-मतवारे, मैं प्रेम-सुधा ढलकाऊँ।
तुम रहो न मुझसे न्यारे, मैं हियमें आय समाऊँ॥
आओ, नयनोंके तारे० ॥

अनुपम सुषमा-श्रीधारे! मोहन! मैं तुम्हें रिझाऊँ।
हियकी सब जाननहारे! तुमसे मैं कहा छिपाऊँ॥
आओ, नयनोंके तारे० ॥

२४–चुलबुलापन। २५–चाँदीका। २६–पिंजरा।

सुख और शान्तिकी प्राप्ति कैसे हो ?

(लेखक—स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

परमात्माकी विशेष कृपासे हम सबको मानव-शरीर मिला है । इसका सदुपयोग करनेसे हमें वास्तविक सुख मिल सकता है । शास्त्रों और संतोंका ऐसा ही कथन है । जीव परमात्माका ही अंश है—**ममैवांशः** (गीता १५ । ७), इस सत्यको भूल जानेके कारण वह परमात्मासे विमुख हो प्रकृतिजनित शरीर और संसारमें आसक्त हो जाता है । इस प्रकार प्रकृतिस्थ होना ही उसके लिये दुःखका कारण है (गीता १३ । २१) । प्रकृतिस्थ जीव सुखकी इच्छासे जिन वस्तुओंका संग्रह करता है, वे सब नश्वर होती हैं । संसारकी सभी वस्तुएँ असुख हैं—दुःखरूप हैं । उनसे सुख पानेकी इच्छा रखना ही दुःखका मूल है, विचार करनेपर सबको ऐसा अनुभव हो सकता है । इन सब बातोंपर विचार करनेके लिये हमें मानव-जीवन मिला है । परमात्माने जिस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये हमें मानव-जीवन प्रदान किया है, उसीके लिये इसका उपयोग करना ही इस जीवनका सदुपयोग है ।

परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही जीवको मानव-शरीर मिलता है और मिला है; अतः हमें जन्मसे ही परमात्म-प्राप्तिकी योग्यता प्राप्त है । योग्यता प्राप्त न होनेपर इस कथनकी संगति नहीं होती कि परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही हमें यह शरीर मिला है । यदि समय, समझ, सामर्थ्य और सामग्रीका ठीक-ठीक उपयोग किया जाय तो तत्काल ही शान्ति प्राप्त हो सकती है ।

विचार करके देखें तो यह बात समझमें आ सकती है कि हमें परमात्मा नित्य ही प्राप्त हैं । अज्ञानवश क्षणभङ्गुर प्राणि-पदार्थोंका सङ्ग हो जानेके कारण वे अप्राप्त-से हो गये हैं । इसीका फल यह है कि हमें दुःख प्राप्त होता है । जगत् नश्वर एवं दुःखरूप है, परमात्मा नित्य सुख-स्वरूप हैं और उनके साथ हमारी सतत एकता है—इन बातोंका विचार करनेसे तत्काल शान्ति प्राप्त होती है ।

हम परमात्माके हैं और परमात्मा हमारे हैं । उनके साथ हमारा यह सम्बन्ध स्वतःसिद्ध है, नित्य है । हम सब परमात्माके अंश होनेसे शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वरूप हैं, इस यथार्थ तत्त्वका अनुभव होते ही सदाके लिये प्राप्तव्यकी प्राप्ति हो जाती है, हम कृतकृत्य हो जाते हैं । इसीलिये संतोंने कहा है—

'रहता रूप सही करि राखौ,
बहता सँग न वहीजे ।'

'स्वरूप सदा रहनेवाला है, उसे सँभालकर रखना चाहिये । बहतेके साथ बहना नहीं चाहिये ।' बहतेका सङ्ग छोड़ देना चाहिये । उससे सुखकी आशा कभी नहीं करनी चाहिये । जो यथायोग्य सबकी सेवा करता है और किसीसे किंचिन्मात्र भी नहीं चाहता, वह कृतकृत्य हो जाता है । जो केवल परमात्मासे प्रेम करता है, उसे पानेयोग्य सब कुछ प्राप्त हो जाता है । उसके लिये कुछ भी पाना शेष नहीं रहता । जो परमात्मासे अपने स्वरूपकी अभिन्नताका अनुभव कर लेता है, उसे सम्पूर्ण ज्ञातव्यका ज्ञान हो जाता है । उसके लिये पुनः कुछ जानना शेष नहीं रहता ।

'**वासुदेवः सर्वम्**—सब कुछ भगवान् वासुदेव ही हैं'—इस दृष्टिसे जिन्होंने सबको भगवत्स्वरूप समझा या अनुभव किया है, उनके जीवनमें आनन्द-ही-आनन्द है । वे स्वयं आनन्दरूप ही हैं । जिन्होंने संसारको दुःखालय (दुःखका घर) और अशाश्वत (क्षणभङ्गुर) जाना है, अथवा अनित्य एवं असुख समझा है, वे भी परम सुखी हैं; क्योंकि उन्हें संसारसे सुखकी आशा ही नहीं है । उनके हृदयमें इच्छा और द्वेषका सर्वथा अभाव हो गया है । वे पापहीन पुण्यकर्मा मनुष्य द्वन्द्व और मोहसे सर्वथा विनिर्मुक्त हो दृढतापूर्वक भगवान्का भजन करते हैं—'**ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः** ।' (गीता ७ । २८)

जिन लोगोंने संसारमें शत्रु-मित्र, त्याज्य-ग्राह्य, ठीक-

बेठीक, अनुकूल-प्रतिकूल आदिका भाव बना रखा है, उन्हें महान् क्लेश भोगना पड़ता है। जो तत्त्वतः भगवत्स्वरूप ही है, उसमें भेद-बुद्धि कर लेना अथवा जो नश्वर होनेसे सर्वथा हेय ही है, उसमें ठीक-बेठीक आदिका भाव बना लेना दुःखका ही कारण है। क्या कर्तव्य है और क्या अकर्तव्य—इस विषयमें शास्त्रको ही प्रमाण मानना चाहिये। शास्त्रीय दृष्टिको त्यागकर मनमाने आचरण करनेसे दुःख-ही-दुःख मिलता है।

'वासुदेवः सर्वम्'—यह प्रौढ ज्ञानदृष्टि है; सिद्ध भक्तों अथवा सुदुर्लभ महात्माओंकी दृष्टि है। संसार अनित्य और दुःखरूप है—ऐसा अनुभव करना साधककी दृष्टि है।

'गए ते आवन के नहीं, रहे ते जावनहार।'

—ऐसी दृष्टि रखनेसे संसारका समग्ररूपसे त्याग सम्भव है। अपने सुखके लिये जगत्‌की इच्छा न करना 'त्याग' है तथा देह, इन्द्रिय, मन-बुद्धि आदिको प्रकृतिका ही अंश जानकर इन्हें अपना स्वरूप न मानना 'त्याग' है।

जो संसारसे सुखकी इच्छा नहीं रखता तथा जो शरीर-इन्द्रिय आदिमें अहंबुद्धि नहीं करता, वह 'मुक्त' है। वह राजा जनककी भाँति देहमें रहता हुआ भी 'विदेह' है। जिसने यह स्थिति प्राप्त कर ली, उसीका जीवन सार्थक है। उसने मानव-जीवनका उपयोग स्वर्ग-नरक अथवा अधोगतिके लिये नहीं किया है। उसने अपवर्गके लिये अर्थात् भगवत्प्राप्तिरूप मोक्षके लिये इस जीवनका सदुपयोग किया है। वही मनुष्योंमें बुद्धिमान् है, वही योगयुक्त है, उसीने सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मका अनुष्ठान कर लिया है—**'स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥'** (गीता ४ । १८) वह कृतकृत्य हो चुका है।

सुख प्यारा लगता है, परंतु वह पुण्योंका क्षय करनेवाला है। दुःख अप्रिय प्रतीत होता है, परंतु वह पापोंका क्षय करनेवाला है। दुःखके वियोगमें और सुखके संयोगमें सुख मिलता है। सुखके वियोगमें और दुःखके संयोगमें दुःख मिलता है। दुःख भोगते समय सुखकी इच्छा महान् दुःख देनेवाली है। सुखोपभोगके समय सुखकी आसक्ति अत्यन्त दुःखप्रद है। सुख-भोग-परायणता मूढता, मलिनता और अधोगति प्रदान करनेवाली है। काम-सुखमें निज सुखकी इच्छा है। एक-दूसरेके शोषणमें ही काम-सुख सम्भव है। इसके विपरीत प्रेम-सुखमें निज-सुखकी इच्छा या भावना नहीं है। उसमें एक-दूसरेका पोषण है। सुख-ही-सुख है—दुःखका नाम नहीं है, ऐसा विचारकर दृढतापूर्वक सुख-दुःखसे ऊपर उठकर भगवान्‌का होकर उनका भजन करना चाहिये। 'मैं श्रीभगवान्‌का हूँ और श्रीभगवान् मेरे हैं'—यों समझकर किया गया भजन तत्काल शान्ति प्रदान करनेवाला है।

लोगोंमें यह भावना दृढतापूर्वक घर कर गयी है कि भजन करते-करते कभी भगवान् मिलेंगे। परंतु शास्त्र और तत्त्वज्ञ संत कहते हैं—भगवान्‌का होकर उनका भजन करनेसे तत्काल ही परम कल्याण होता है। गोस्वामी तुलसीदासजीकी वाणी है—

बिगरी जनम अनेक की सुधरै अबहीं आजु।
होइ राम को, नाम जपु, तुलसी तजि कुसमाजु ॥

परमात्मा और जीवात्मा एक जातिके हैं। परमात्माके साथ हमारी जातिगत एवं स्वरूपगत एकता है, ऐसा अनुभव करना सर्वश्रेष्ठ भजन है—

'ईस्वर अंस जीव अबिनासी।
चेतन अमल सहज सुखरासी ॥'

शरीर और संसारसे 'मैं' और 'मेरेपन'का भाव हटाकर श्रीभगवान्‌में जोड़ देना चाहिये। घर, जमीन-जायदाद आदि जितनी भी जड वस्तुएँ हैं, उनमें किसीके प्रति भी ममता नहीं करनी चाहिये। अपने स्वरूपको भूलकर ही मनुष्य इनसे ममता जोड़ता है। माता-पिता, स्त्री-पुत्र आदिमें भी ममता करना उचित नहीं है। जहाँतक बने, भगवत्प्रीत्यर्थ इनकी उचित सेवा करते रहनेसे श्रीभगवान् प्रसन्न हो जाते हैं और उनके साथ नित्य सुखपूर्ण सम्बन्धकी स्मृति प्राप्त होती है। इसीमें मानव-जीवनकी सार्थकता है।

श्रीकृष्णकी मधुर बालकेलि !

बनी सहज यह लूट हरि-केलि गोपीन कें,
सपनेहूँ यह कृपा कमला न पावै।
निगम निरधारि, त्रिपुरारि हू बिचारि रह्यौ,
पचि रह्यौ सेस, नहिं पार पावै ॥
किंनरी बहुत अरु बहुत गंधरबिनी,
पंनगिनी चितवन नहिं माँझ पावैं।
देत करताल वे लाल गोपाल कौं,
पकरि ब्रजबाल कपि ज्यौं नचावैं ॥
कोउ कहै, ललन ! पकराउ मोहि पाँवरी;
कोउ कहै, ललन ! बलि लाउ पीढ़ी।
कोउ कहै, ललन ! गहाउ मोहि सोहनी;
कोउ कहै, लाल ! चढ़ि जाउ सीढ़ी ॥
कोउ कहै, ललन ! देखौ, मोर कैसैं नचैं;
कोउ कहै, भ्रमर कैसैं गुंजारैं।
कोउ कहै, पौरि लगि दौरि आऔ, लाल !
रीझि मोतीन के हार वारैं ॥
जो कछु कहैं ब्रजबधू, सोइ-सोइ करत,
तोतरे बैन बोलन सुहावै।
रोय परत बस्तु जब भारी न उठै, तबै
चूमि मुख जननी उर सौं लगावै ॥
देन कहि लौनी पुनि चाहि रहत बदन,
हँसि स्वभुज बीच लै-लै कलोलैं।
धाम के काम ब्रज बाम सब भूलि रहीं,
कान्ह-बलराम के संग डोलैं ॥
'सूर' गिरिधरन मधु चरित-मधु पान कै
और अमृत कछु आन लागै।
और सुख रंक की कौन इच्छा करै,
मुक्ति हूँ लौन-सी खारी लागै ॥

"अहाहा! देखो, श्रीगोपीजनोंके लिये श्रीश्यामसुन्दरकी बालकेलिकी यह लूट कैसी सहज बन गयी है, जिसके लिये कमला अर्थात् श्रीलक्ष्मीजी भी ललचाती हैं; किंतु यह कृपा उनको स्वप्नमें भी प्राप्त नहीं होती। यह उन परात्पर दिव्य पुरुषकी केलि है, जिनके विषयमें वेद नाना प्रकारके विकल्पोंका आश्रय लेकर भी किसी निर्णयपर नहीं पहुँचते, जिनके विषयमें त्रिपुरारि देवाधिदेव श्रीमहादेव भी निरन्तर समाधिस्थ होकर विचार ही करते रहते हैं, और शेषजी तो अपनी हजारों जिह्वाओंसे जिनका यशोगान करते-करते थक भी जाते हैं, किंतु उन्हें भी जिनका पार नहीं मिलता। किंनरी, गंधर्वी और पन्नगी आदि देवयोनिकी स्त्रियोंके दृष्टिगत तो वे आजतक कभी हुए ही नहीं। उन परब्रह्म परात्पर परमेश्वरने तो व्रजबालाओंके सुख-दानार्थ व्रजमें अवतार लिया है, तभी तो वे परम सौभाग्यवती व्रजबालाएँ ताली दे-देकर और उन्हीं बाल-गोपालको पकड़-पकड़कर बंदरकी तरह नचाती हैं।

"कोई कहती है—'लाल ! मुझको वह पाँवरी (खड़ाऊँ) तो ला दीजिये।' तब दूसरी उनकी बलिहारी लेकर उन्हें पीढ़ा-चौकी ले आकर देनेको कहती है। तब तीसरी सोहनी (झाड़ू) पकड़ानेको कहती है तो चौथी कहती है—'लालन ! उन सीढ़ियोंपर तो चढ़कर मुझे दिखाओ।' तब कोई उनसे मोर जैसे नाचता है, उसी भाँति नाचनेके लिये आग्रह करती है, तो कोई उनसे भ्रमरकी-सी गुंजार करनेको कहती है और कोई उन्हें पौरीपर्यन्त दौड़ आनेके लिये कहती है। वे सब रीझ-रीझकर उनपर मोतियोंके हार न्योछावर करती हैं।

"श्रीकृष्ण व्रजस्त्रियोंकी आज्ञाकी अवहेलना न करके उनके इशारेपर वैसा ही करते हैं, जैसा वे उनसे कराती हैं। तोतले वचनोंसे मीठी-मीठी बातें कहकर उनका सुख बढ़ाते हैं। कोई बोझिल वस्तु जब उनसे उठती नहीं, तब तो वे रो पड़ते हैं। तुरंत श्रीयशोदाजी उनका मुख चूमकर उन्हें हृदयसे लगा लेती हैं। वे कहती हैं— 'बस, चुप हो जा; मैं तुझे मक्खनकी डली देती हूँ।' तब वे यशोदाकी ओर देखकर रोना बंद कर देते हैं और चुप होकर हँस देते हैं। सभी गोपीजन भुजाओंके बीच उन्हें भरकर उनसे खेल करने लगती हैं। वे सब अपने गृहकार्योंको भूली रहती हैं और कान्ह-बलरामके साथ लगी हुई इसी सुखमें डूबी रहती हैं। जो श्रीगिरिधरलालके मधुर चरित्ररूपी मधुका पान करके छक गये हैं, उन्हें और सब अमृत फीके लगते हैं।

"श्रीसूरदासजी कहते हैं कि और सुख तो रङ्क और भिखारियोंके समान ही हैं; उनकी तो उन्हें चाह ही क्यों होने लगी। अजी, उस सुखके सामने मुक्ति-सुख भी उन्हें वाञ्छनीय नहीं; वह भी उनके लिये लवणके समान खारा है, उसका भी वे तिरस्कार कर देती हैं।"

श्री'कृष्ण'-नामका माधुर्य

तुण्डे ताण्डविनी रतिं वितनुते तुण्डावलीलब्धये
कर्णक्रोडकडम्बिनी घटयते कर्णार्बुदेभ्यः स्पृहाम्।
चेतःप्राङ्गणसङ्गिनी विजयते सर्वेन्द्रियाणां कृतिं
नो जाने जनिता कियद्भिरमृतैः कृष्णेतिवर्णद्वयी॥

(विदग्धमाधव)

'कृष्ण'—यह दो अक्षरोंका नाम न जाने कितने प्रकारके अमृतोंसे बनाया गया है! यह जिस समय जीभपर नृत्य करने लगता है, उस समय ऐसा रस आने लगता है कि इच्छा होती है, अनेक मुख हों तो नाम लेनेका कुछ स्वाद मिले। यही नहीं, जब ये दो अक्षर कर्ण-कुहरमें प्रवेश करते हैं, उस समय चाह होने लगती है कि अरबों कान हों तो इस मधुर नामके श्रवणका कुछ आनन्द आये। जब यही नाम जिह्वा और कानोंके मार्गसे चित्तमें प्रवेश कर जाता है, तब तो वह पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंके व्यापारको बंद करके उनपर छा जाता है।

मधुरमधुरमेतन्मङ्गलं मङ्गलानां
सकलनिगमवल्लीसत्फलं चित्स्वरूपम्।
सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा
भृगुवर नरमात्रं तारयेत् कृष्णनाम॥

सूतजी कहते हैं—शौनकजी! कृष्ण-नाम जितने भी मधुर पदार्थ हैं, उन सबसे अधिक मधुर है; जितनी भी मङ्गल वस्तुएँ हैं, उनसे अधिक मङ्गलमय है। यह सम्पूर्ण वेदरूपी कल्पलताका श्रेष्ठ फल है और चिन्मय है। श्रद्धासे अथवा अवज्ञापूर्वक एक बार भी उच्चारण किये जानेपर यह मनुष्यमात्रको मोक्ष देनेवाला है।

पतितपावनी श्रीगङ्गाजी—३

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

[गताङ्क पृ० ७८८ से आगे]

उपेन्द्रचरणद्रवा गङ्गा उत्पत्ति-स्थिति-संहारकारिणी हैं। इन महिमामयी देवीका माहात्म्य ब्रह्मपुराण, विष्णुपुराण, देवी-भागवत, स्कन्दपुराण, मार्कण्डेयपुराण, वामनपुराण, शिवपुराण और मत्स्यपुराण आदिमें विस्तारपूर्वक गाया गया है। नारद पुराणमें सनकजी देवर्षि नारदसे कहते हैं—

विष्णुपादोद्भवा देवी विश्वेश्वरशिरःस्थिता।
संसेव्या मुनिभिर्देवैः किं पुनः पामरैर्जनैः॥
(ना० पु०, पूर्वभाग, प्र० पा० ६। १३)

'भगवान् विष्णुके चरण-कमलोंसे प्रकट होकर भगवान् शिवके मस्तकपर विराजमान होनेवाली भगवती गङ्गा मुनियों और देवताओंके द्वारा भी भलीभाँति सेवन करनेयोग्य हैं, फिर साधारण मनुष्योंके लिये तो बात ही क्या है ?'

फिर अचिन्त्यशक्ति मङ्गलमयी गङ्गाजीका स्मरण कर सनकजी अत्यन्त पुलकित होकर अचरजके साथ कहते हैं—

अहो माया जगत्सर्वं मोहयत्येतदद्भुतम्।
यतो वै नरकं यान्ति गङ्गानाम्नि स्थितेऽपि हि॥
सकृदप्युच्चरेद् यस्तु गङ्गेत्येवाक्षरद्वयम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति॥
(ना० पु०, पूर्वभाग, प्र० पा० ६। २५, २७)

"अहो! माया सारे जगत्को मोहमें डाले हुए है, यह कितनी अद्भुत बात है! क्योंकि गङ्गा-नामके रहते हुए भी लोग नरकमें जाते हैं।……'जो एक बार भी 'गङ्गा'—इन दो अक्षरोंका उच्चारण कर लेता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है।''

भगवान् व्यास श्रीगङ्गाजीका गुणगान करते हुए आनन्दोल्लासपूर्वक कहते हैं—"ब्राह्मणो! गङ्गाजीके सम्पूर्ण गुणोंका वर्णन करनेमें चतुर्मुख ब्रह्माजी भी समर्थ नहीं हैं। मुनि, सिद्ध, गन्धर्व तथा अन्यान्य श्रेष्ठ देवता गङ्गाजीके तीरपर तपस्या करके स्वर्गलोकमें स्थिर भावसे विराजमान हुए हैं। आजतक वे वहाँसे इस संसारमें नहीं लौटे।

तपोभिर्बहुभिर्यज्ञैर्व्रतैर्नानाविधैस्तथा।
पुरुदानैर्गतिर्या च गङ्गां संसेव्य तां लभेत्॥
(प० पु०, सृ० ६४। २४)

'तपस्या, बहुत-से यज्ञ, नाना प्रकारके व्रत तथा पुष्कल दान करनेसे जो गति प्राप्त होती है, गङ्गाजीका सेवन करके मनुष्य उसी गतिको पा लेता है।'

"संक्रान्ति, व्यतीपात, विषुवयोग* तथा दोनों अयनोंमें (मकर और कर्ककी संक्रान्तिके दिन), चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण और पुष्य नक्षत्रमें गङ्गाजीमें स्नान करके मनुष्य अपने कुलकी करोड़ पीढ़ियोंका उद्धार कर सकता है। निश्चय ही वे मनुष्य धन्य हैं, जो उत्तरायणके शुक्लपक्षमें सृष्टिपति श्रीविष्णुका ध्यान करते हुए गङ्गाजीके जलमें देहत्याग करते हैं। गङ्गाजीमें पितरोंको† पिण्डदान तथा तिलमिश्रित जलसे उनका तर्पण करनेपर वे यदि नरकमें हों तो स्वर्गमें चले जाते हैं और स्वर्गमें हों तो मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। गङ्गाजीमें या उनके तटपर किया हुआ यज्ञ, दान, तप, जप, श्राद्ध और देवपूजन प्रतिदिन कोटि-कोटिगुना अधिक फल देनेवाला होता है। माता-पिता, बन्धु-बान्धव, अनाथ तथा गुरुजनोंकी हड्डी गङ्गाजीमें गिरानेसे मनुष्य कभी स्वर्गसे भ्रष्ट नहीं होता। जो मानव अपने पितरोंकी हड्डियोंके टुकड़े बटोरकर उन्हें गङ्गाजीमें डालनेके लिये ले जाता है, वह पग-पगपर अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है। मनुष्यकी हड्डी जबतक गङ्गाजीके जलमें पड़ी रहती है, उतने ही हजार वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। गङ्गा-तटकी मिट्टी अपने मस्तकपर धारण करनेवाला गङ्गामें स्नान किये बिना ही सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। गङ्गा-स्नानकी यात्रामें निकले मनुष्यकी यदि मार्गमें मृत्यु हो जाय तो वह गङ्गा-स्नान किये बिना ही पापोंसे छूट जाता है। गङ्गाजीकी यात्रा करनेवालेको मार्ग बता देनेवाला भी परम

* ज्योतिषके अनुसार वह समय जब कि सूर्य विषुवरेखापर पहुँचता है और दिन-रात दोनों बराबर होते हैं, 'विषुवयोग' कहलाता है। ऐसा समय वर्षमें दो बार आता है। एक तो सौर चैत्र मासकी नवमी तिथिको और दूसरा सौर आश्विनकी नवमी तिथिको।

† सम्पूर्ण देवता और पितर गङ्गाजीमें सदा वर्तमान रहते हैं, इसलिये वहाँ उनका आवाहन और विसर्जन नहीं होता। (स्क० पु०, काशी०)

पुण्यका अधिकारी होता है और उसे गङ्गास्नानका फल प्राप्त हो जाता है।"

भगवान् व्यास गङ्गाजीके ध्यानमें तन्मय होकर आगे कहते हैं—"गङ्गाजी सर्वत्र सुलभ होते हुए भी गङ्गाद्वार*, प्रयाग और गङ्गा-सागर-संगम—इन तीन स्थानोंमें दुर्लभ हैं†—वहाँ इनकी प्राप्ति बड़े भाग्यसे होती है। वहाँ तीन रात या एक रात निवास करनेसे भी मनुष्य परम गतिको प्राप्त होता है। विशेषतः इस कलिकालमें सत्त्वगुणरहित मनुष्योंको कष्टसे छुड़ाने और मोक्ष प्रदान करनेवाली गङ्गाजी ही हैं। गङ्गाजीके सेवनसे अनन्त पुण्यका उदय होता है।"

विशेषात्कलिकाले च गङ्गा मोक्षप्रदा नृणाम्।
कृच्छ्राच्च क्षीणसत्त्वानामनन्तः पुण्यसम्भवः॥
(प० पु०, स० ६४। १२२)

निखिल ब्रह्माण्डनायक भगवान् श्रीकृष्णने पुण्यसलिला भगवती गङ्गाजीसे कहा था—

मृतस्य बहुपुण्येन तच्छवं त्वयि विन्यसेत्।
प्रयाति स च वैकुण्ठं यावदस्थ्नां स्थितिस्त्वयि॥
कायव्यूहं ततः कृत्वा भोजयित्वा स्वकर्मजम्।
तस्मै ददामि सारूप्यं तं करोमि च पार्षदम्॥
अज्ञानी त्वज्जलस्पर्शाद्यदि प्राणान् समुत्सृजेत्।
तस्मै ददामि सारूप्यं तं करोमि च पार्षदम्॥
अन्यत्र वा त्यजेत्प्राणांस्त्वन्नामस्मृतिपूर्वकम्।
तस्मै ददामि सारूप्यमसंख्यं प्राकृतं लयम्॥
(ब्रह्मवै०, २। १०। ७८—८१)

'मृतक प्राणीके अत्यधिक पुण्य होनेपर ही उसका शव तुम्हारे जलमें डाला जायगा और जबतक उसकी अस्थि तुम्हारे भीतर रहेगी, उतने समय वह वैकुण्ठमें रहेगा। इस प्रकार अपने कर्मोंके भोग कराने और कायव्यूह (कायाकल्प) करनेके अनन्तर उसे सारूप्य मोक्ष देकर मैं अपना पार्षद बनाता हूँ। अज्ञानी प्राणी यदि तुम्हारे जलका स्पर्श करके अपने प्राणोंका परित्याग करता है तो मैं उसे सारूप्य मोक्ष देकर अपना पार्षद बनाता हूँ। तुम्हारे नामका स्मरण करते हुए यदि मनुष्य कहीं अन्यत्र प्राणोत्सर्जन करता है तो मैं उसे सालोक्य मोक्ष देता हूँ, जिसमें रहकर वह असंख्य प्रलयका दर्शन करता है।'*

क्षेत्रमें विद्यमान या कहीं अन्यत्र उठाकर लाया गया अतिशय शीतल या अतिशय उष्ण—सभी प्रकारका गङ्गाका पुनीत जल आजीवन किये गये पापोंको नष्ट करनेवाला है। पूजामें बासी पुष्प और बासी जल वर्जित हैं, परंतु बासी होनेपर भी तुलसीदल और गङ्गाजल वर्जित नहीं हैं।† ये पुराने हो जानेपर भी काममें लाये जा सकते हैं। गङ्गाजलसे भगवान् शालग्रामके स्नान करानेका अमित माहात्म्य है।

गङ्गा-स्नान करनेके लिये तिथि, नक्षत्र और पूर्व आदि दिशाका विचार नहीं करना चाहिये; क्योंकि गङ्गामें स्नान करनेमात्रसे ही समस्त संचित पापोंका नाश हो जाता है। स्पर्श और दर्शनकी अपेक्षा गङ्गा देवीमें मौसल‡ स्नान करनेसे दसगुना पुण्य होता है। त्रयतापनिवारिणी श्रीगङ्गाजीके तटपर निवास करनेवाले तो धन्य हैं ही। जो प्रतिदिन आदरसे गङ्गाजीका माहात्म्य सुनते हैं, उन्हें भी गङ्गा-स्नानका फल होता है। जो एक बार भी ताँबेके पात्रमें रखे हुए अष्ट-द्रव्ययुक्त गङ्गाजलसे भगवान् सूर्यको अर्घ्य देते हैं, वे अपने पितरोंके साथ

* पद्मपुराणके आधारपर।

† गंग अवनि थल तीनि बड़ेरे। (मानस २। २८६। २)

*मृत्युकाल निकट प्रतीत होनेपर स्त्री-पुरुष, बाल, युवा और वृद्ध—किसीको भी उसके मुँहमें गङ्गाजल और तुलसी अवश्य देनी चाहिये। भगवान् श्रीविष्णुका चरणामृत (जिसमें गङ्गाजल और तुलसी-दल स्वाभाविक ही रहता है) का सेवन तो सर्वोत्तम है। मृत्युके अनन्तर शवको श्रीगङ्गाजीतक पहुँचानेका पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये; पर अधिक दूरी आदिकी असुविधासे यह सम्भव न हो तो भस्मा-वशिष्ट अस्थियाँ तो अवश्य ही जगदुद्धारिणी माता जाह्नवीकी पावनतम धारामें डालनी चाहिये।

† वर्ज्यं पर्युषितं पुष्पं वर्ज्यं पर्युषितं जलम्।
न वर्ज्यं तुलसीपत्रं न वर्ज्यं जाह्नवीजलम्॥
(स्क० पु०, वै० मा० मा० ८। ९)

‡ श्रीगङ्गाजीको प्रणाम करके जलमें प्रवेश करे और निश्चेष्ट होकर अर्थात् बिना हाथ-पैर हिलाये शान्तभावसे स्नान कर ले, इसे 'मौसल स्नान' कहते हैं।

सूर्यलोकमें जाकर प्रतिष्ठित होते हैं।* यदि सोमवारको चन्द्रग्रहण तथा रविवारको सूर्यग्रहण हो तो वह 'चूड़ामणि' नामक पर्व कहलाता है। उसमें किया हुआ गङ्गा-स्नान अनन्त पुण्यप्रद है। प्रत्येक महीनेकी चतुर्दशी तथा अष्टमी तिथिको गङ्गा-स्नान-का विशेष माहात्म्य है। 'वाराणस्यां विशेषेण गङ्गा सद्यस्तु मोक्षदा' (बृहन्ना०)—विशेषतः गङ्गाजी काशीपुरीमें शीघ्र मोक्षदायिनी मानी गयी हैं। कार्तिक और माघ मासमें, सूर्यके उत्तरायण होनेपर तथा तुला एवं मेषकी संक्रान्तिपर गङ्गा-स्नानका बड़ा माहात्म्य है। द्वादशी तिथिको, श्रवण नक्षत्रमें, अष्टमीको पुष्य नक्षत्रका योग होनेपर, तथा आर्द्रा नक्षत्रयुक्त चतुर्दशी तिथि-को—इन अवसरोंपर गङ्गास्नान दुर्लभ है। वैशाख मासकी पूर्णिमा तथा कार्तिक मासकी अमावस्याके दिन गङ्गा-स्नान अत्यन्त पुण्यप्रद है। कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथिका स्नान सहस्रगुना फलदायक है।

श्रीगङ्गाजीमें स्नान करते समय निम्नाङ्कित तीन श्लोकोंके भावसे प्रार्थना करते रहनेसे मनुष्य करोड़ों जन्मोंके पापसे निस्संदेह मुक्त हो जाता है।

विष्णुपादाब्जसम्भूते गङ्गे त्रिपथगामिनि ॥
धर्मद्रवीति विख्याते पापं मे हर जाह्नवि।
विष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुपूजिता ॥
त्राहि मामेनसस्तस्मादाजन्ममरणान्तकात्।
श्रद्धया धर्मसम्पूर्णे श्रीमता रजसा च ते ॥
अमृतेन महादेवि भागीरथि पुनीहि माम्।
(प० पु०, स० ३४। ५८—६१)

"भगवती गङ्गे! तुम श्रीविष्णुके चरण-कमलसे प्रकट होनेके कारण परम पवित्र हो। तीनों लोकोंमें गमन करनेसे 'त्रिपथगामिनी' कहलाती हो। तुम्हारा जल धर्ममय है, इसलिये तुम धर्मद्रविके नामसे विख्यात हो। जाह्नवी! मेरे पाप हर लो। भगवान् श्रीविष्णुके चरणोंसे तुम्हारा प्रादुर्भाव हुआ है। तुम श्रीविष्णुद्वारा सम्मानित तथा वैष्णवी हो। मुझे जन्मसे लेकर मृत्युतकके पापोंसे बचाओ। धर्मपूर्ण महादेवी भागीरथि! तुम श्रद्धासे, शोभायमान रजःकणोंसे तथा अमृतमय जलसे मुझे पवित्र करो।"

वैशाख शुक्ल सप्तमीको क्रुद्ध होकर महर्षि जह्नुने गङ्गाको पी लिया था और फिर उसी दिन दाहिने कानके छिद्रसे छोड़ भी दिया था, अतः आकाशवाहिनी गङ्गा-देवीका उस दिन पूजन भी करना चाहिये। ज्येष्ठ महीनेके शुक्लपक्षकी दशमी तिथिको मङ्गलके दिन हस्तनक्षत्रमें जाह्नवी मर्त्यलोकमें अवतरित हुईं, उक्त तिथिको स्नान और पूजन करनेसे गङ्गा दस घोर पापोंको दूर कर देती हैं और अश्वमेधसे भी दस-गुना अधिक फल प्रदान करती हैं। श्रीगङ्गाजीका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—

श्वेतचम्पकवर्णाभां गङ्गां पापप्रणाशिनीम्।
कृष्णविग्रहसम्भूतां कृष्णतुल्यां परां सतीम् ॥
वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम्।
शरत्पूर्णेन्दुशतकप्रभाजुष्टकलेवराम् ॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्।
नारायणप्रियां शान्तां सत्सौभाग्यसमन्विताम् ॥
(ब्र० वै०, प्रकृति० १०। ९६—९८)

"श्वेत चम्पाके पुष्पके समान वर्णवाली, सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाली, भगवान् कृष्ण (विष्णु) के शरीरसे समुत्पन्न एवं उन्हींके समान भक्तजनानन्ददायिनी परम सती भगवती गङ्गाका ध्यान करता हूँ। अग्निके समान परम शुद्ध रक्तवर्णका वस्त्र धारण किये हुए, रत्नजटित आभूषणोंसे विभूषित, शरत्-पूर्णिमाके सैकड़ों चन्द्रमाओंकी कान्तियोंसे सुशोभित शरीरवाली, मन्द-मन्द मुस्कानसे प्रसन्न मुखवाली, सर्वदा स्थिर रहनेवाली यौवनावस्थासे सुशोभित, परम शान्तिमयी, नारायणकी प्रियतमा, परम सौभाग्यशालिनी (देवी) का ध्यान करता हूँ।"*

---

* जल, दूध, कुशका अग्रभाग, घी, मधु, गायका दही, लाल कनेर तथा लाल चन्दन—इन आठ अङ्गोंसे युक्त अष्टाङ्ग अर्घ्य बताया गया है, जो सूर्यदेवको अधिक संतुष्ट करनेवाला है—

आपः क्षीरं कुशाग्राणि घृतं मधु गवां दधि।
रक्तानि करवीराणि रक्तचन्दनमित्यपि ॥
अष्टाङ्गार्घोऽयमुद्दिष्टस्त्वतीव रवितोषणः ॥
(स्क० पु०, काशी०, पू० २७। ९८-९९)

* चतुर्भुजां त्रिनेत्रां च सर्वावयवभूषिताम्।
रत्नकुम्भां सिताम्भोजां वरदामभयप्रदाम् ॥
श्वेतवस्त्रपरीधानां मुक्तामणिविभूषिताम्।
सदा ध्यायेत् सुरूपां तां चन्द्रायुतसमप्रभाम् ॥
(भविष्यपुराण)

श्रीगङ्गाजीकी चार भुजाएँ हैं। उनके तीन नेत्र हैं। उनके सम्पूर्ण अङ्ग सुन्दर हैं। आभूषणोंसे सुशोभित हो रहे हैं। वे एक हाथमें (जलपूरित) रत्नघट, दूसरे हाथमें श्वेतपद्म, तीसरेमें वरद मुद्रा एवं चौथेमें अभय मुद्रा धारण किये हैं। वे सदा

इसके अनन्तर आसन, पाद्य, अर्घ्य, स्नान, अनुलेपन, शीतल जल, वस्त्र, आभूषण, माला, चन्दन, आचमन, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल और सुन्दर शय्या—इन षोडश उपचारोंसे गङ्गाजीकी पूजा करनी चाहिये। इसके अनन्तर परम कल्याणकारिणी श्रीगङ्गाजीके सम्मुख भक्ति-भावसे इस स्तोत्रका पाठ करना चाहिये—

ॐ नमः शिवायै गङ्गायै शिवदायै नमो नमः।
नमस्ते विष्णुरूपिण्यै ब्रह्ममूर्त्यै नमोऽस्तु ते॥
नमस्ते रुद्ररूपिण्यै शांकर्यै ते नमो नमः।
सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्तये॥
सर्वस्य सर्वव्याधीनां भिषक्छ्रेष्ठ्यै नमोऽस्तु ते।
स्थाणुजंगमसम्भूतविषहन्त्र्यै नमोऽस्तु ते॥
संसारविषनाशिन्यै जीवनायै नमोऽस्तु ते।
तापत्रितयसंहन्त्र्यै प्राणेश्यै ते नमो नमः॥
शान्तिसंतानकारिण्यै नमस्ते शुद्धमूर्तये।
सर्वसंशुद्धिकारिण्यै नमः पापारिमूर्तये॥
भुक्तिमुक्तिप्रदायिन्यै भद्रदायै नमो नमः।
भोगोपभोगदायिन्यै भोगवत्यै नमोऽस्तु ते॥
मन्दाकिन्यै नमस्तेऽस्तु स्वर्गदायै नमो नमः।
नमस्त्रैलोक्यभूषायै त्रिपथायै नमो नमः॥
नमस्त्रिशुक्लसंस्थायै क्षमावत्यै नमो नमः।
त्रिहुताशनसंस्थायै तेजोवत्यै नमो नमः॥
नन्दायै लिङ्गधारिण्यै सुधाधारात्मने नमः।
नमस्ते विश्वमुख्यायै रेवत्यै ते नमो नमः॥
बृहत्यै ते नमस्तेऽस्तु लोकधात्र्यै नमोऽस्तु ते।
नमस्ते विश्वमित्रायै नन्दिन्यै ते नमो नमः॥
पृथ्व्यै शिवामृतायै च सुवृषायै नमोऽस्तु ते।
परापरशताढ्यायै तारायै ते नमो नमः॥
पाशजालनिकृन्तिन्यै अभिन्नायै नमोऽस्तु ते।
शान्तायै च वरिष्ठायै वरदायै नमो नमः॥
उग्रायै सुखजग्ध्यै च संजीवन्यै नमोऽस्तु ते।
ब्रह्मिष्ठायै ब्रह्मदायै दुरितघ्न्यै नमो नमः॥
प्रणतार्तिप्रभञ्जिन्यै जगन्मात्रे नमोऽस्तु ते।
सर्वापत्प्रतिपक्षायै मङ्गलायै नमो नमः॥
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥
निर्लेपायै दुर्गहन्त्र्यै दक्षायै ते नमो नमः।
परापरपरायै च गङ्गे निर्वाणदायिनि॥
गङ्गे ममाग्रतो भूया गङ्गे मे तिष्ठ पृष्ठतः।
गङ्गे मे पार्श्वयोरेधि गङ्गे त्वय्यस्तु मे स्थितिः॥
आदौ त्वमन्ते मध्ये च सर्वं त्वं गां गते शिवे।
त्वमेव मूलप्रकृतिस्त्वं पुमान् पर एव हि॥
गङ्गे त्वं परमात्मा च शिवस्तुभ्यं नमः शिवे॥
(स्क० पु०, काशी०, पू० २७। १५७—१७४)

"ॐ शिवस्वरूपा श्रीगङ्गाजीको नमस्कार है। कल्याणदायिनी गङ्गाको नमस्कार है। देवि गङ्गे! आप विष्णुरूपिणी हैं, आपको नमस्कार है। ब्रह्मस्वरूपा! आपको नमस्कार है, रुद्ररूपिणी! आपको नमस्कार है। शंकरप्रिया! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। देवस्वरूपिणी! आपको नमस्कार है। औषधरूपा! आपको नमस्कार है। आप सबके सम्पूर्ण रोगोंकी श्रेष्ठ वैद्य हैं, आपको नमस्कार है। स्थावर और जंगम प्राणियोंसे प्रकट होनेवाले विषका आप नाश करनेवाली हैं, आपको नमस्कार है। संसाररूपी विषका नाश करनेवाली जीवनरूपा आपको नमस्कार है। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—तीनों प्रकारके क्लेशोंका संहार करनेवाली आपको नमस्कार है। प्राणोंकी स्वामिनी आपको नमस्कार है। शान्तिका विस्तार करनेवाली शुद्धस्वरूपा आपको नमस्कार है। सबको शुद्ध करनेवाली तथा पापोंकी शत्रुस्वरूपा आपको नमस्कार है। भोग, मोक्ष तथा कल्याण प्रदान करनेवाली आपको बार-बार

उज्ज्वल वस्त्र धारण करती हैं और मणि तथा मोतियोंसे सुशोभित हैं। उनमें हजारों चन्द्रमाओंकी ज्योति छिटक रही है। इस प्रकार (भक्तको) सदा उनके सुन्दर रूपका ध्यान करना चाहिये।

सितमकरनिषण्णां शुभ्रवर्णां त्रिनेत्रां
करधृतकलशोद्यत्सोत्पलामत्यभीष्टाम्।
विधिहरिहररूपां सेन्दुकोटीरचूडां
कलितसितदुकूलां जाह्नवीं तां नमामि॥

श्रीगङ्गाजी श्वेत मगरपर बैठी हुई हैं। उनके शरीरका रंग गोरा है। उनके तीन नेत्र हैं। दो हाथोंमें भरे हुए घड़े हैं। दूसरे दो हाथोंमें सुन्दर सफेद कमल हैं। वे सब प्रकारसे भक्तोंके लिये परम इष्ट हैं। वे ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनोंका ही रूप हैं—तीनोंका काम करती हैं। उनके मस्तकपर चन्द्रजटित मुकुट सुशोभित हो रहा है। वे सुन्दर श्वेत वस्त्रोंसे विभूषित हैं। ऐसी माँ गङ्गाको मेरा नमस्कार है।

नमस्कार है। भोगोंका उपभोग देनेवाली 'भोगवती' नामसे प्रसिद्ध आप पातालगङ्गाको नमस्कार है। 'मन्दाकिनी' नामसे प्रसिद्ध तथा स्वर्ग प्रदान करनेवाली आप आकाशगङ्गाको बार-बार नमस्कार है। आप भूतल, आकाश और पाताल—तीन मार्गोंसे जानेवाली और तीनों लोकोंकी आभूषणस्वरूपा हैं, आपको बार-बार नमस्कार है। गङ्गाद्वार, प्रयाग और गङ्गा-सागर-संगम—इन तीन विशुद्ध तीर्थस्थानोंमें विराजमान आपको नमस्कार है। क्षमावती आपको नमस्कार है। गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्निरूप त्रिविध अग्नियोंमें स्थित रहनेवाली तेजोमयी आपको बार-बार नमस्कार है। आप ही अलकनन्दा हैं; आपको नमस्कार है। शिवलिङ्ग धारण करनेवाली आपको नमस्कार है। सुधाधारामयी आपको नमस्कार है। जगत्में मुख्य सरितारूप आपको नमस्कार है। रेवती-नक्षत्ररूपा आपको नमस्कार है। बृहती नामसे प्रसिद्ध आपको नमस्कार है। लोकोंको धारण करनेवाली आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण विश्वके लिये मित्र-रूपा आपको नमस्कार है। सबको समृद्धि देकर आनन्दित करनेवाली आपको बारंबार नमस्कार है। आप पृथ्वीरूपा हैं, आपको नमस्कार है। आपका जल कल्याणमय है और आप उत्तम धर्मस्वरूपा हैं, आपको नमस्कार है, नमस्कार है। बड़े-छोटे सैकड़ों प्राणियोंसे सेवित आपको नमस्कार है। सबको तारनेवाली आपको नमस्कार है। संसार-बन्धनका उच्छेद करनेवाली अद्वैतरूपा आपको नमस्कार है। आप परमशान्त, सर्वश्रेष्ठ तथा मनोवाञ्छित वर देनेवाली हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। आप प्रलयकालमें उग्ररूपा हैं, अन्य समयमें सदा सुखका भोग करानेवाली हैं तथा उत्तम जीवन प्रदान करनेवाली हैं; आपको नमस्कार है। आप ब्रह्मनिष्ठ, ब्रह्मज्ञान देनेवाली तथा पापोंका नाश करनेवाली हैं; आपको बार-बार नमस्कार है। प्रणतजनोंकी पीड़ाका नाश करनेवाली जगन्माता आपको नमस्कार है। आप समस्त विपत्तियोंकी शत्रुभूता तथा सबके लिये मङ्गलस्वरूपा हैं, आप-के लिये बार-बार नमस्कार है। शरणागतों, दीनों तथा पीड़ितोंकी रक्षामें संलग्न रहनेवाली और सबकी पीड़ा दूर करनेवाली देवि नारायणि ! आपको नमस्कार है। आप पाप-ताप अथवा अविद्यारूपी मलसे निर्लिप्त, कठिनाइयोंका नाश करनेवाली तथा दक्ष हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। आप पर और अपर—सबसे परे हैं। मोक्षदायिनी गङ्गे ! आपको नमस्कार है। गङ्गे ! आप मेरे आगे हों, गङ्गे ! आप मेरे पीछे रहें; गङ्गे ! आप मेरे उभयपार्श्वमें स्थित हों तथा गङ्गे ! मेरी आपमें ही स्थिति हो। पृथ्वीपर पधारी हुई कल्याणमयी गङ्गे ! आदि, मध्य और अन्तमें—सर्वत्र आप हैं और आप ही सर्वस्वरूपा हैं। गङ्गे ! आप ही मूलप्रकृति हैं, आप ही परम पुरुष हैं तथा आप ही परमात्मा शिव हैं, शिवे ! आपको नमस्कार है।''

उस दिन स्त्री हो या पुरुष, भक्तिभावसे रात्रिमें जागरण करे और दस प्रकारके दस-दस सुगन्धित पुष्प, फल, नैवेद्य, दस दीप और दशाङ्ग-धूपके द्वारा विधिपूर्वक दस बार गङ्गाजीकी पूजा करनी चाहिये। गङ्गाजीके जलमें घृतसहित तिलोंकी दस अञ्जलियाँ डाले। फिर गुड़ और सत्तूके दस पिण्ड बनाकर उन्हें भी गङ्गाजीमें डाले। यह सब कार्य गङ्गाजीका मन्त्र बोलते हुए करना चाहिये। मन्त्र इस प्रकार है—

'ॐ नमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै गङ्गायै स्वाहा।'

फिर भगवान् शंकर, विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य, हिमवान् पर्वत और राजा भगीरथकी भलीभाँति पूजा करे। दस ब्राह्मणोंको आदरपूर्वक दस सेर तिल दे। इस प्रकार दान-पूजा और व्रत करनेवाला पुरुष दस जन्मोंमें उपार्जित दस प्रकारके* पापोंसे छूट जाता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

हमारे पुराणादि ग्रन्थोंमें जहाँ पुण्यतोया जाह्नवीकी महिमाका सर्वत्र गान किया गया है, वहीं उक्त परमपावनी देवीकी मर्यादा एवं उसकी पवित्रता सुरक्षित रखनेके लिये कुछ नियम भी बताये गये हैं। उनका पालन भी नितान्त

---

* ये दस पाप इस प्रकार हैं—

> अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः।
> परदारोपसेवा च कायिकं त्रिविधं स्मृतम्॥
> पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चैव सर्वशः।
> असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम्॥
> परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम्।
> वितथाभिनिवेशश्च मानसं त्रिविधं स्मृतम्॥
>
> (स्क० पु०, काशी०, पू० २७। १५२—१५४)

''बिना दी हुई वस्तुको लेना, निषिद्ध हिंसा, परस्त्री-संगम—यह तीन प्रकारका दैहिक पाप माना गया है। कठोर वचन बोलना, झूठ बोलना, सब ओर चुगली करना और अंट-संट बातें बकना—ये वाणीसे होनेवाले चार प्रकारके पाप हैं। दूसरेके धनको लेनेका विचार करना, मनमें दूसरोंका बुरा सोचना और असत्य वस्तुओंमें आग्रह रखना—ये तीन प्रकारके मानसिक पाप कहे गये हैं।''

आवश्यक है ।* पुराणोंमें बताये इन निम्नाङ्कित दोषोंसे अवश्य बचना चाहिये—

शौचमाचमनं चैव निर्माल्यं मलघर्षणम् ॥
गात्रसंवाहनं क्रीडां प्रतिग्रहमथो रतिम् ।
अन्यतीर्थरतिं चैव अन्यतीर्थप्रशंसनम् ॥
वस्त्रत्यागमथाघातं संतारञ्च विशेषतः ।
नाभ्यङ्कितः प्रविशेच्च गङ्गायां न मलार्दितः ॥
न जल्पञ्च मृषा वीक्षञ्च वदन्ननृतं नरः ।

× × × ×

"पुण्यमयी श्रीगङ्गाजीमें मल-मूत्र-त्याग, कुल्ला करना, निर्माल्य फेंकना, मलसंघर्षण या शरीरको मलना नहीं चाहिये । गङ्गाजीमें शरीरको दबाना भी नहीं चाहिये और न जल-क्रीड़ा करनी चाहिये । इसी प्रकार दान-ग्रहण भी नहीं करना चाहिये । अन्य तीर्थोंके प्रति भक्ति और अन्य तीर्थकी प्रशंसा भी नहीं करनी चाहिये । पहिने हुए वस्त्रका छोड़ना, जलपर आघात करना या अधिक तैरना भी नहीं चाहिये । शरीरमें तेल मलकर या मैले शरीर होकर गङ्गामें प्रवेश नहीं करना चाहिये । गङ्गाजीके किनारे बकवाद, मिथ्या भाषण या कुदृष्टि नहीं करनी चाहिये ।"

सुरेश्वरी गङ्गा करुणाकी मूर्ति हैं । सम्पूर्ण जीवोंके प्रति इनके रोम-रोममें दया भरी है । दयामयी माता गङ्गाने वसुओंकी प्रार्थनासे द्रवित होकर मानवी बनना भी स्वीकार कर लिया । वह प्रख्यात मङ्गलमयी कथा इस प्रकार है—

महाभारत आदिपर्वके सम्भवपर्वमें आया है—एक बारकी बात है । चतुर्मुख ब्रह्माकी सभामें देवगणोंके साथ सत्यवादी एवं सत्यपराक्रमी इक्ष्वाकुवंशोत्पन्न पुण्यात्मा नरेश महाभिष उपस्थित थे । उसी समय गङ्गाजी भी वहाँ आयीं । वायुके झोंकेसे उनका परम शुभ्रवस्त्र सहसा ऊपर उठ गया । देवताओंने तुरंत अपना मुख नीचे कर लिया, किंतु महाभिष नरेश निश्शङ्क होकर गङ्गाजीकी ओर देखते ही रह गये । तब कुपित होकर ब्रह्माने उन्हें शाप दे दिया—'दुर्मते ! तुम्हें मनुष्योंमें जन्म लेना पड़ेगा । तुम जिस गङ्गापर मुग्ध हो गये हो, वही तुम्हारे प्रतिकूल आचरण करेगी ।' फिर दयामूर्ति लोकपितामहने कहा—'जब तुम्हें गङ्गापर क्रोध आ जायगा, तब तुम भी शापसे मुक्त हो जाओगे ।'

"महाराज महाभिषने बहुत सोच-विचारकर परम प्रतापी प्रतीपनरेशका पुत्र होना स्वीकार किया । समयपर महाराज प्रतीपकी सौभाग्यशालिनी पत्नीकी कुक्षिसे सूर्यतुल्य प्रकाशमान देवोपम पुत्र (राजा महाभिष) ने जन्म लिया । शान्त पिताकी संतान होनेसे वे शान्तनु कहलाये ।*

"उधर राजा महाभिषकी अधीरताका चिन्तन करती हुई गङ्गाजी जा रही थीं कि उन्होंने वसुदेवताओंको मोहाच्छन्न और मलिनवेषमें स्वर्गसे नीचे गिरते हुए देखकर दयापूर्वक पूछा—'तुमलोगोंका दिव्यरूप कैसे नष्ट हो गया ?'

"वसुदेवताओंने देवनदी गङ्गाजीसे अपनी व्यथा-कथा बतायी—'एक दिन वसिष्ठजी वृक्षोंकी ओटमें संध्या-वन्दन कर रहे थे कि हमलोगोंने उनकी गायोंका अपहरण कर लिया । इससे क्रुद्ध होकर उन्होंने हमें मनुष्ययोनिमें जन्म लेनेका शाप दे दिया ।

"आप मानव-पत्नी होकर हमें पुत्ररूपमें उत्पन्न करें'—ब्रह्मवादी महर्षि वसिष्ठकी अमिट वाणीसे आकुल होकर वसुओंने गङ्गाजीसे प्रार्थना की । 'हमें मानुषी स्त्रियोंके उदरमें प्रवेश न करना पड़े, इतनी कृपा करें ।'

'धरतीपर राजा प्रतीपके लोकविख्यात पुत्र शान्तनु हमारे पिता होंगे ।' वसुओंने आगे कहा । 'त्रैलोक्यपावनी गङ्गे ! मर्त्यलोकसे हमारी शीघ्र मुक्तिके लिये आप हमें जन्म लेते ही अपने पवित्र जलमें फेंक दें ।'

'मैं ऐसा ही करूँगी ।' करुणामूर्ति गङ्गाजीने कहा । 'किंतु राजाका मेरे साथ पुत्रार्थ क्रिया सम्बन्ध व्यर्थ न हो, इसलिये उनके लिये एक पुत्रकी व्यवस्था तो होनी ही चाहिये ।'

'हम सब लोग अपने-अपने तेजका अष्टमांश देंगे'—वसुओंने अपनी भावी माता गङ्गाजीको आश्वस्त किया । 'उस तेजसे आपका पुत्र राजाकी इच्छाके अनुरूप होगा, किंतु वह पुत्र ब्रह्मचारी और परम पराक्रमी होगा ।'

* आजकल नगरोंके समीप तथा दूसरे स्थानोंपर भी गङ्गाजीके पवित्र तटपर कुछ लोग मल-मूत्रका त्याग कर देते हैं । इससे दुर्गन्ध फैलती रहती है । हमें इस अपराधसे अवश्य-अवश्य बचना चाहिये और दूसरोंसे भी विनीत प्रार्थना करनी चाहिये कि वे भी कृपापूर्वक कल्याणमयी माता गङ्गाके तटपर मल-मूत्र-विसर्जन न करें ।

* शान्तस्य जज्ञे संतानस्तस्मादासीत् स शान्तनुः ।
(महा०, आदि०, सम्भव० ९७ । १९)

"इसके अनन्तर वसुगण वहाँसे स्वेच्छया चले गये।

× × ×

"शान्तनो !' कुछ दिनोंके बाद नरेश प्रतीपके पुत्र उत्पन्न हुआ। वह युवक होनेपर धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ एवं अद्भुत धनुर्धर हो गया। वेदाध्ययनमें उसकी उच्चतम स्थिति थी। उससे उसके पुण्यात्मा पिताने कहा—'बहुत पहले तुम्हारे कल्याणके लिये मेरे पास एक दिव्य सुन्दरी स्त्री आयी थी। यदि वह तुम्हारे पास कभी आये, तो उससे तुम कौन हो ? किसकी पुत्री हो ।' आदि कोई प्रश्न न करना। उसके किसी कार्यमें कोई प्रश्न तुम्हें नहीं करना चाहिये। यदि वह तुम्हें स्वीकार करे तो तुम मेरी आज्ञासे उसे पत्नीके रूपमें स्वीकार कर लेना।'

"इस प्रकारका उपदेश कर महाराज प्रतीप अपने अद्भुत धर्मपरायण योग्यतम युवक पुत्र शान्तनुको राज्यपर अभिषिक्त कर स्वयं तपश्चरणके लिये वनमें चले गये।

"एक दिन शान्तनु पुण्यतोया गङ्गाजीके तटपर एकाकी विचरण कर रहे थे कि उन्होंने समुद्रतनया लक्ष्मीके समान एक अनुपमरूप-लावण्य-सम्पन्न दिव्य सुन्दरीको देखा। नरेश उसे देखते ही मोहित हो गये। सुन्दरी भी उनकी ओर प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देख रही थी। परम पुण्यमय शान्तनुने उस अनिन्द्य सुन्दरीसे कहा—'देवि ! तुम दानवी, गन्धर्वी, अप्सरा, यक्षी, नागकन्या या मानवी कोई भी क्यों न हो, मैं तुम्हें पत्नीके रूपमें स्वीकार करना चाहता हूँ।'

"परमसाध्वी गङ्गाने वसुओंको दिये वचनका स्मरण कर महाराज शान्तनुके समीप आकर कहा—'भूपाल ! मैं आपकी महारानी बनूँगी। किंतु एक तो आप मुझे कभी कोई कटु वचन न कहें और मैं भला या बुरा जो भी करूँ, उसमें कभी व्यवधान उत्पन्न न करें। इस प्रकार मैं आपके अधीन रहूँगी; किंतु जिस दिन आपने मुझे किसी कार्यसे रोका या अप्रिय वचन कहा, उसी दिन मैं आपको त्यागकर चली जाऊँगी।'

'मुझे तुम्हारी शर्त स्वीकार है।' इतना कहकर अत्यन्त संयमी महाराज शान्तनु दिव्य सौन्दर्यकी सजीव मूर्ति गङ्गाको रथपर बैठाकर प्रसन्नतापूर्वक लौटे। अपने पिताके आदेशका स्मरण कर वे उनसे कभी कोई प्रश्न नहीं पूछते थे; किंतु गङ्गाके श्रेष्ठ शील-स्वभाव, सदाचार, सौन्दर्य, उदारता, सद्गुण तथा एकान्त सेवासे वे आप्यायित रहते थे। त्रिपथगामिनी दिव्यरूपिणी देवी गङ्गाकी प्रीतिमें कितने संवत्सर निकल गये, यह महाराज शान्तनुको पता भी नहीं चला।

"कुछ दिनों बाद पुत्रदात्री गङ्गाके अङ्कमें अभिशप्त एक वसु आया। गङ्गाने उसे—'वत्स ! मैं तुम्हें शापमुक्त कर प्रसन्न हो रही हूँ।' कहकर अपनी निर्मल धारामें डुबा दिया।

"महाराज शान्तनु दुःखी हुए, पर सर्वथा मौन थे। इसी प्रकार जो-जो पुत्र उत्पन्न होता, दयामयी जाह्नवी उसे अपनी त्रैलोक्यपावनी धारामें डुबा देतीं। इस प्रकार सुरसरिने सात पुत्रों (वसुओं) को अपने पवित्रतम जलमें डुबा दिया। नरेश अत्यन्त व्याकुल होनेपर भी चुप रह जाते। उन्हें उक्त लोकोत्तर देवीको छोड़कर चले जानेका भय बना रहता। किंतु आठवाँ पुत्र उत्पन्न होनेपर उसकी प्राण-रक्षाके लिये व्याकुलतासे अत्यन्त अधीर होकर महाराज शान्तनुने रोष-पूर्वक मुस्कराती हुई गङ्गासे कहा—

मा वधीः कस्य कासीति किं हिनस्सि सुतानीति।
पुत्रघ्नि सुमहत् पापं सम्प्राप्तं ते सुगर्हितम् ॥
(महा० आदि० सम्भव० ९८ । १६)

'अरी ! इस बालकका वध न कर, तू किसकी कन्या है ? कौन है ? क्यों अपने ही बेटोंको मारे डालती है। पुत्रघातिनी ! तुझे पुत्रहत्याका यह अत्यन्त निन्दित और भारी पाप लगा है।'

'मैं महर्षियोंद्वारा सेवित जह्नुपुत्री गङ्गा हूँ।' त्रिपथगामिनीने महाराज शान्तनुको उत्तर दिया। 'मैं आपके इस पुत्रको नहीं मारूँगी, परंतु अब मैं यहाँ रह भी नहीं सकती—यह पहले ही शर्त हो चुकी है। मैं अभिशप्त वसुओंके उद्धारके लिये यहाँ आयी थी, आपका यह पुत्र वसुओंके पराक्रमसे सम्पन्न होकर आपके वंशको यशस्वी करनेके लिये उत्पन्न हुआ है। मेरा यह पुत्र देवदत्त और गङ्गादत्त—इन दो नामोंसे प्रख्यात होगा। यह अभी शिशु है। बड़ा होनेपर आपके पास आ जायगा।'

"गङ्गादेवी अपने पुत्रके साथ वहीं अन्तर्धान हो गयीं। यही गङ्गादत्त महाभारतके अद्भुतपराक्रमी बाल-ब्रह्मचारी पितामह भीष्म हुए। (अपूर्ण)

आस्तिकताकी आधारशिलाएँ

आप चाहें तो निश्चिन्त हो सकते हैं

खूब नाम लीजिये तथा भगवान्‌की कृपाका दर्शन प्रत्येक परिस्थितिमें कीजिये । भगवत्कृपा एवं नामजपका आश्रय लेकर निश्चिन्त हो जाइये । आप चाहें तो निश्चिन्त हो सकते हैं; आपके चाहनेभरकी देर है । आपने चाहा तो नामके रूपमें भगवान् बिना किसी परिश्रमके ही जीभपर नाचने लगेंगे, उनकी कृपाका प्रवाह बह जायगा । स्वयं निहाल हो जायँगे और बहुतोंको निहाल करेंगे ।

× × ×

नाम अधिक-से-अधिक जपिये, इतनी प्रार्थना है । श्रीकृष्ण बड़े दयालु हैं, लेकिन परीक्षा भी अवश्य करते हैं । साथ ही उनके दरबारसे कोई निराश नहीं लौटता, यह बात भी भूलनी नहीं चाहिये ।

युगल-सरकारको चित्तमें बसाइये

युगल-सरकारको चित्तमें बसाइये—जीवनका यही परम लाभ है । समय विद्युत्‌की भाँति आपके देखते-देखते आपको छोड़कर भाग रहा है । गिनतीके श्वास एक-एक करके कम होते जा रहे हैं । अब समय नहीं है कि आप किसी भी अन्य प्रपञ्चमें तनिक भी मन लगायें । वाणी प्रिया-प्रियतमके मधुर नामका उच्चारण करे, कान उनके लीलामृतका पान करें एवं नेत्रोंके सामने युगलछवि निरन्तर बनी ही रहे—बस, यही अभ्यास करना है तथा प्राणोंकी शक्ति लगाकर करना है ।

भगवच्चिन्तनकी चेष्टा कीजिये, सफलता मिलेगी

खूब मौजसे श्रीकृष्णका निरन्तर चिन्तन कीजिये । सब काम एक तरफ तथा भगवच्चिन्तन एक तरफ । मनसे निश्चय करके चिन्तनकी चेष्टा कीजिये, तब चिन्तनमें सफलता मिलेगी । अन्यथा जबतक भगवान्‌के चिन्तनके समान कोई भी दूसरा काम लाभकारी दीखेगा, तबतक मन भगवान्‌को छोड़कर उस कामकी ओर ही झुकेगा; क्योंकि अनादिकालसे अन्य-अन्य विषयोंमें ही मनको स्वाद मिलता रहा है, भगवच्चिन्तन-का स्वाद उसे ठीकसे कभी नहीं मिला । मिला होता तो फिर तो भगवच्चिन्तनके सिवा दूसरा काम मनसे होता ही नहीं ।

महावाणीके पाठका अधिकारी

महावाणीके पाठ करनेका वास्तविक अधिकारी वह है, जिसके मनसे स्त्रीसम्भोगकी भावना सर्वथा समाप्त हो गयी हो, जो कामविकारसे सर्वथा मुक्त हो गया हो । महावाणी एक परम दिव्य ग्रन्थ है । बिना अधिकारी बने जो उसका पारायण करता है, उसके जीवनमें पतनकी ही आशङ्का विशेष है । प्रिया-प्रियतम उनकी रक्षा करें ।

शरीरके लिये संयम, पथ्य एवं औषधकी व्यवस्था रखनी ही चाहिये

शरीर क्षण-क्षणमें विनाशकी ओर ही बढ़ रहा है, यह प्रत्यक्ष है; पर विनष्ट होनेसे पूर्व इसे यथासम्भव इस अवस्थामें अवश्य रखना चाहिये कि यह अपनेमें रहनेवाले मनको प्रिया-प्रियतमकी ओर बढ़ते समय कहीं उद्विग्न न कर दे । मन जिस क्षण वास्तवमें प्रिया-प्रियतमको पकड़ लेगा, उस समय तो इसकी सँभालकी आवश्यकता नहीं रहेगी; सँभाल करेगा भी कौन ? सँभाल करता है मन; किंतु वह तो प्रिया-प्रियतमसे जा जुड़ा । अतः उस परिस्थितिमें तो शरीरका जो होना होगा, हो ही जायगा । पर उससे पूर्व शरीरके लिये संयम, पथ्य एवं औषधकी व्यवस्था रखनी ही चाहिये ।

प्रिया-प्रियतमके प्रति सच्ची चाहका स्वरूप

प्रिया-प्रियतमका अखण्ड चिन्तन करें—बस, यही सार है । अभी मनमें अनेकों वासनाएँ, अनेकों कर्तव्यबुद्धियाँ भरी हैं । सब वासनाओंके जल जानेपर ही प्रिया-प्रियतमके प्रेमकी नींव खुदेगी; जीवनकी धारा उनकी ओर मुड़कर यह सच्ची चाह उत्पन्न होगी—

कबै झुकत मो ओर कौं ऐहैं मद-गज-चाल।
गरबाहीं दीन्हें दोऊ, प्रिया नवल नँदलाल॥
सिर झलकत मंजुल मुकुट, कटि लौं लट रहि छूटि।
सोहत ललित लिलार पै, उभै भौंह की जूटि॥
ता मधि बेंदी रतन की, गर मुकता की माल।
नैन छकौंहे कछु अरुन, सुंदर सरस बिसाल॥
कुंडल-झलक कपोल पर, राजति नाना भाँति।
कब इन नैननि देखिहौं बदन-चंद की कांति॥

अभी तो, सच पूछें, भजनकी नकल भी नहीं पूरी हो रही है। बस, उनकी कृपाकी बाट देखते रहिये।

× × × ×

सिवा युगल-सरकारके और कुछ भी नहीं दीखे— इसका सरल-से-सरल उपाय है कि मनमें युगल-सरकारके प्रति आसक्ति पैदा हो जाय। फिर मनमें ही नहीं, बाहरकी आँख भी जहाँ जायगी, वहाँ युगल-सरकार ही दीख पड़ेंगे। वस्तुतः युगल-सरकारके अतिरिक्त देखनेके लायक कोई और वस्तु है भी नहीं; पर हमलोगोंका मलिन मन इस बातको नहीं मानता, यही दुर्भाग्य है।

वही करें, जिसमें श्रीप्रिया-प्रियतमका मार्ग अधिक-से-अधिक प्रशस्त हो

जीवनका अनमोल समय व्यर्थ न जाय। बातों-बातोंमें ही जीवन समाप्त होता जा रहा है। यदि श्रीप्रिया-प्रियतमके चरणोंमें अनुराग नहीं हुआ तो यहाँकी सारी सफलता व्यर्थ है। दूसरे, बातोंसे अनुराग होता भी नहीं; उसके लिये सर्वस्व त्याग करना पड़ता है। जबतक कुछ भी बचाकर रख लेनेकी वासना है, तबतक प्रेमकी बात करना तमाशा-सा है। अतः कहना यह है कि मन-ही-मन जरा यहाँके मोहको छोड़नेका अभ्यास कीजिये। माना, आपमें त्याग है, पर साथ ही सात्त्विक चेष्टाके नामपर बहुत-सी ऐसी चेष्टाएँ भी आप करते रहते हैं, जिनमें आपकी शक्ति व्यर्थ खर्च होती है। अतः एकमात्र वही आपको करना चाहिये, जिससे श्रीप्रिया-प्रियतमके प्रेमका मार्ग अधिक-से-अधिक प्रशस्त हो। थोड़ी सावधानी रखें, जिससे आपके द्वारा जो व्यर्थ चेष्टाएँ होती हैं, उनमें रोक लगे।

सारी बात इसपर निर्भर करती है कि श्रीप्रिया-प्रियतमकी स्मृति कितनी होती है। यदि स्मृति बढ़ रही है तो मार्ग ठीक है; किंतु यदि इसमें कमी आ रही है तो आप पथ भूल गये हैं, यह निश्चित बात है। आप इस कसौटीपर कसकर ही जीवनका सावधानीसे सुधार करना चाहिये।

दूसरेकी ओर न देखकर आप अपनेको ही सुधारिये

आप वृन्दावनमें रह रहे हैं—यह बड़ा सौभाग्य है; पर वृन्दावनमें रहकर आप दूसरोंकी त्रुटिरूप गंदी बातोंको देखनेके लिये समय क्यों लगाते हैं? मेरी तो प्रेमभरी राय है कि जहाँ-कहीं भी—जिस स्थानमें, जिस मन्दिरमें बुरी बातोंको देखने-सुननेका मौका मिले, वहाँ जाना आप स्थगित कर दें। सर्वत्र आपको यदि यही मिलता हो तो आप जिस मकानमें हैं, उसीको प्रिया-प्रियतमका मन्दिर मानकर उसके कण-कणमें उनकी भावना कीजिये। वे वहाँ हैं ही; आपको इसलिये नहीं दीखते कि आप अभी उन्हें देखना नहीं चाहते। किंतु यदि आपका मकान कहीं त्रुटियुक्त वातावरणसे भरा हो तो मैं तो यही कहूँगा कि आप वृन्दावन छोड़कर कहीं दूसरी जगह चले जाइये। बस, दूसरेकी ओर न देखकर आप अपनेको ही सुधारिये।

× × × ×

व्रजमें रहते हुए जीवन श्रीप्रिया-प्रियतमके चरणोंमें न्योछावर होना चाहिये। इसीके लिये अधिक-से-अधिक चेष्टा होनी चाहिये। प्रपञ्चकी बात कम-से-कम सुनें एवं कहें। अपना अधिकांश समय भजन, ध्यान, पाठ, श्रीविग्रह-दर्शन, श्रीरास-दर्शन, लीला-श्रवण एवं प्रिया-प्रियतमके नाम-कीर्तन आदिमें ही बिताना चाहिये।

'श्रीगुरुजी'—एक आध्यात्मिक विभूति

(लेखक—श्रीभीमसेन)

गत ५ जूनको भारतीय गगन-मण्डलसे एक और ज्योतिर्मय नक्षत्र अदृश्य हो गया। हमारे स्वधर्म, स्वभाव तथा संस्कृतिके आधारपर हमारी मातृभूमिके गौरवमय उज्ज्वल भविष्यके निर्माणकी सत्प्रेरणा देनेवाले महापुरुष श्रीगुरुजी इस धराधामपर नहीं रहे। वे गत ३३ वर्षोंसे सतत भ्रमण करते हुए आसेतु-हिमाचल अपनी ओजस्विनी वाणीमें 'संघे शक्तिः कलौ युगे' मन्त्रका अलख जगा रहे थे। सच्चे अर्थोंमें वे वर्तमान युगके एक श्वेतवस्त्रधारी अनिकेत संन्यासी थे। रेलका डिब्बा ही उनका स्थायी निवास बन गया था। प्रतिवर्ष वे पूरे देशका प्रायः दो बार भ्रमण कर ही लिया करते थे। श्रीगुरुजीने अपने निजी जीवनका सजीव आदर्श सम्मुख रखकर लक्ष-लक्ष युवकोंको चरित्रवान्, सुशिक्षित, संगठित तथा अनुशासनबद्ध बनाया और भाषा एवं प्रदेशकी संकीर्ण परिधिसे ऊपर उठते हुए जीवनके सभी क्षेत्रोंमें नवजीवनका संचार करनेके लिये उनका आह्वान किया और हिंदू-जातिके फिरसे उठकर खड़ा हो जानेका आशावाद तथा विश्वास जन-जनमें उन्होंने जाग्रत् किया।

एक सुदृढ़ सबल एवं वैभव-सम्पन्न समाजका निर्माण करनेके लिये कृतसंकल्प श्रीमाधवराव सदाशिवराव गोल्वलकर सामान्यतः प्रखर राष्ट्रवादके प्रवक्ता एवं राष्ट्रके पुनरुत्थानके लिये सचेष्ट तरुण पीढ़ीके लोकनायकके रूपमें विख्यात हैं। परंतु उनकी दिनचर्या, रहन-सहन, आचार-विचार, व्यक्तिगत जीवन एवं चरित्रगत विशेषताओंका अनुशीलन करनेपर एवं उन्हें निकटसे देखनेपर यह बात सहज ही ध्यानमें आती है कि वे मूलतः एक आध्यात्मिक विभूति थे। उनके समग्र व्यक्तित्वका गठन आध्यात्मिक आधारपर होनेके कारण ही ३३ वर्षोंतक लक्षावधि उच्च शिक्षाप्राप्त युवकोंके हृदय-सिंहासनपर आसीन रहते हुए वे उन्हें त्यागमय, सेवानिष्ठ जीवन व्यतीत करनेकी प्रेरणा दे सके। अनेक दैवी सद्गुणोंसे विभूषित उनके निर्मल, निस्स्वार्थ, अहंताशून्य एवं ध्येयनिष्ठ जीवनसे आकृष्ट तथा मुग्ध होकर कितने ही उदीयमान युवकोंने अपने व्यक्तिगत जीवनकी सम्पूर्ण बागडोर उन्हींके हाथोंमें सौंप रखी थी एवं अपनी समस्त आकाङ्क्षाओं, आशाओं और सुख-सपनोंको तिलाञ्जलि देकर वे श्रीगुरुजीके संकेतपर कुछ भी कर डालनेके लिये प्रस्तुत रहते थे।

श्रीगुरुजीने स्वामी विवेकानन्दके गुरु-बन्धु स्वामी अखण्डानन्दजीके पास सारगाछी आश्रममें रहते हुए साधना की थी और उनसे दीक्षा भी ली। उन्हींकी इच्छासे श्रीगुरुजीने अपने केश तथा वेष रख छोड़े थे। अपने संघ-जीवनमें सतत प्रवास करते समय भी पूज्य स्वामीजीकी पावन स्मृतिके रूपमें उनका कमण्डलु सदैव श्रीगुरुजीके साथमें ही रहा; जिसे उठाने-रखनेका कार्य वे सदैव अपने ही हाथोंसे किया करते थे। प्रभातसे लेकर अर्धरात्रितक बैठकोंके आयोजन, शाखाओंके निरीक्षण, भाषण, पत्रलेखन, स्वाध्याय तथा अन्यान्य विविध कार्योंमें अत्यधिक व्यस्त रहनेपर भी उनकी संध्योपासना एवं नित्य पूजामें किसी कारणसे भी कभी कोई व्यतिक्रम श्रीगुरुजीको रुचिकर नहीं था। और चलते-फिरते, उठते-बैठते प्रायः उनके श्रीमुखसे निस्सृत श्रीकृष्ण, गोविन्द, गोपालकी ध्वनि सुनायी दे ही जाती थी। अपने वृद्ध माता-पिताके लिये चारों धामोंकी तीर्थयात्राकी व्यवस्था अत्यन्त श्रद्धापूरित हृदयसे श्रीगुरुजीने अपने निजी निरीक्षणमें स्वयं करायी थी और स्वयं भी एक श्रद्धालु यात्रीके रूपमें इन तीर्थोंमें भ्रमण कर चुके थे। श्रीबदरीनाथधामके अपने पञ्चदिवसीय निवासमें पूज्य श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीसे श्रीमद्भागवतकी कथा श्रवण करते समय श्रीकृष्णके व्रज छोड़कर मथुरागमनका प्रसङ्ग आनेपर उनकी आँखोंसे अविरल अश्रुप्रवाह चल पड़ा था।

श्रीगुरुजीके सम्पूर्ण जीवन, भाव-भावनाओं, विचारों, चरित्र तथा व्यक्तित्वका विमल प्रासाद भगवदास्थाकी सुदृढ़ मनोभूमिपर अधिष्ठित था। भगवदास्थाका स्वरूप ही है—भगवान्‌का निरन्तर स्मरण, भगवन्नामपर निष्ठा और भगवान्‌की मङ्गलमयतापर अडिग विश्वास। इस संदर्भमें महाप्रयाणके एक मास पूर्व—५ मई, १९७३ को श्रद्धेय श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीको लिखे गये श्रीगुरुजीके पत्रकी निम्न-लिखित पङ्क्तियाँ तो अपने आपमें मुखर हैं ही, साथ ही जीवनके अन्तिम तीन वर्षोंमें कैंसर-जैसे भीषणतम रोगके शारीरिक और मानसिक आघातको जिस धैर्य, साहस एवं शान्तिके साथ सहन करते हुए उन्होंने अपने स्वीकृत कर्तव्यको अन्तिम क्षणतक अविरामरूपमें गतिमान् रखा है, वह आदर्श है और वह उनकी विदेह-अवस्थाका रूप सामने उपस्थित कर देता है। पत्रकी पङ्क्तियाँ इस प्रकार हैं—

"·········मनोयोगसे भगवत्-स्मरणमें जुटा हूँ। दूसरा काम नहीं है, यह सौभाग्य है। सामान्य दैहिक कर्म और मेरे मित्रके द्वारा नहलाये जानेके पश्चात् नित्य-कर्मका पालन और फिर आरामकुर्सीमें पड़े-पड़े स्मरणका आनन्द आपके शुभाशीर्वादसे चल रहा है। नहीं तो—

'प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते।' * की अवस्थामें जीवन-नैया डूब जायगी।

मेरा स्वास्थ्य सुधारपर है—

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥

—का अनुभव कर रहा हूँ।

एक चिकित्सक आये थे, उनके औषध-प्रयोगके लिये बहुत-से सुझाव थे। मैंने उन्हें एक ही छोटा-सा उत्तर दिया—'होइहि सोइ जो राम रचि राखा। फिर चिन्ता या दुःखका कारण ही क्या है?"

श्रीगुरुजीके नेतृत्वमें चलनेवाले देशोत्थान-कार्यकी चिन्तनधारा एवं कार्यप्रणालीपर भी उनके अध्यात्मनिष्ठ त्यागमय तपःपूत जीवन एवं भावधाराकी छाप सर्वत्र परिलक्षित होती है। पिछली शताब्दीमें संसारके अन्यान्य देशोंने अपने पुनरुत्थानके लिये रक्त-रञ्जित क्रान्तियाँ, सैनिक तानाशाही, औद्योगिक तथा सामाजिक उलट-फेर, अंधाधुंध यान्त्रीकरण अथवा अन्य भौतिकवादी विचारधाराओंके प्रयोग किये हैं। श्रीगुरुजीने उन सबका गहन अध्ययन एवं सम्यक् विवेचन करते हुए भारतके पुनर्जीवनके लिये उसकी प्रकृतिके अनुरूप मनुष्यत्वसे देवत्वकी ओर ले जानेवाले आध्यात्मिक जीवनदर्शनके अनुसार शाश्वत सद्गुणोंसे सम्पन्न मनुष्योंके निर्माणको ही अपने ध्येयका पाथेय बनाया। तदनुसार उनकी मेघ-गम्भीर तेजस्विनी वाणीसे प्रायः 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' एवं 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' तथा अन्यान्य उपनिषद्वाक्य सहजरूपमें ही सुनायी देते थे। अपने कार्यकर्ताओंसे वार्तालाप करते हुए सदैव उन्हें भगवद्गीता, रामचरितमानस तथा अन्यान्य धर्मग्रन्थोंका अध्ययन-पारायण करनेके लिये श्रीगुरुजी कहते ही रहते थे। संघके शिक्षावर्गों, विविध सामूहिक आयोजनों एवं कार्यालयोंमें भगवद्गीताके १२ वें अध्यायमें वर्णित भक्तोंके 'अद्वेष्टा सर्वभूतानाम्' आदि लक्षणोंका सामूहिक पाठ तथा अपने प्रातःस्मरणीय महापुरुषोंका प्रतिदिन पुण्य-स्मरण एवं देववाणी संस्कृतका प्राधान्य तो उनकी कार्यपद्धतिके अनिवार्य अङ्ग-से बन गये थे। धूम्रपान, मदिरा-सेवन तथा अभक्ष्यभक्षण-जैसी बातोंपर वैधानिक दृष्टिसे कोई प्रतिबन्ध न रहनेपर भी सामान्यतः समूचे संगठनमें ऐसी कुप्रवृत्तियोंके निषेधकी स्वस्थ परम्परा व्यापक स्तरपर स्थापित कर दिखानेमें संघनिर्माता डा० हेडगेवार तथा श्रीगुरुजीके सदाचारनिष्ठ जीवनका बहुत बड़ा हाथ है। इसके अतिरिक्त अपने व्यक्तिगत जीवनका समाजहितमें उत्सर्ग करके और आजीवन अविवाहित रहकर अपनी सम्पूर्ण कार्य तथा बुद्धि-शक्तिका विनियोग समाजसेवाके लिये करनेवाले कार्यकर्ताओंका निर्माण भी उनके समाजसमर्पित जीवनका प्रतिफल है।

संघके स्वयंसेवकोंके व्यक्तिगत एवं संगठित रूपसे राजनीतिमें अभिरुचि लेनेपर भी श्रीगुरुजीने अपने संगठन-कार्यपर राजनीतिको कभी भी हावी नहीं होने दिया। राजनीतिक दलोंद्वारा किये गये समाज तथा देशको विशृङ्खल करनेवाले प्रयासोंका अत्यन्त तीखी एवं सशक्त भाषामें प्रतिरोध करते हुए भी श्रीगुरुजीने अपने आपको दैनंदिन राजनीतिसे अलिप्त रखनेमें सफलता प्राप्त की तथा अनेक प्रलोभनों और दबावके पश्चात् भी वे राजनीतिसे सर्वथा अलग रहे। एक निकटस्थ लब्धप्रतिष्ठ स्वजनने एक बार श्रीगुरुजीसे राजनीतिमें भाग लेनेका अनुरोध करते हुए तर्क प्रस्तुत किया था कि 'राजनीति विष होनेपर भी श्रीगुरुजीको उसका पान कर लेना चाहिये; क्योंकि दैवी शक्तियोंके रक्षणार्थ भगवान् शंकरने भी तो विषपान किया था।' इसका अत्यन्त विनम्र भाषामें प्रत्युत्तर देते हुए श्रीगुरुजीने कहा था—'विषको पचाकर कण्ठका आभूषण बना लेनेकी सामर्थ्य तो केवल शंकरजीमें ही थी; मैं शंकर नहीं हूँ; एक सामान्य जीव हूँ। अतः मुझे क्षमा करें।'

परंतु धर्म-जागरणके विविध प्रयासोंको श्रीगुरुजीने सदैव अपना उन्मुक्त सहयोग प्रदान किया, उनकी सफलताके लिये प्रयास-प्रवास किये, उनके साथ अपना नाम जोड़ा और अपने अनुयायियोंको उन्हें सफल बनानेकी सत्प्रेरणा देनेमें वे सदैव तत्पर दिखायी दिये। सुदूर पर्वतीय तथा पिछड़े क्षेत्रोंमें धर्मजागरण, स्वामी विवेकानन्दजीके स्मारकका निर्माण, संसारभरमें फैले हुए हिंदुओं एवं उनकी संतानों-

* प्राण-प्रयाणके समय कफ-वात-पित्तके द्वारा कण्ठके अवरुद्ध हो जानेपर आपका स्मरण, भला, कैसे सम्भव हो सकेगा?

को हिंदू संस्कारोंमें दीक्षित करके किसी सबल माध्यमद्वारा संगठित करनेका कार्य तथा हिंदूमात्रकी मानबिन्दु गोमाताकी रक्षा आदि-जैसे कितने ही कार्योंके पीछे श्रीगुरुजीकी सत्प्रेरणा ही हेतु बनी है। इसी प्रकार हिंदू शिशुओंको अपने शैशवकालसे ही हिंदू संस्कारों तथा विचारोंमें दीक्षित करनेके लिये देशमें सैकड़ों शिशु तथा बाल-मन्दिरोंका निर्माण उनकी सदिच्छासे ही सम्भव हो पाया है।

नित्यलीलालीन श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके एक श्रद्धालु भक्तसे वार्तालाप करते हुए कुछ ही दिन पूर्व उन्होंने गद्गद कण्ठ तथा भावभरे हृदयसे इस आशयके उद्गार व्यक्त किये थे—

"देशभक्ति, समाज-संगठन, अधिकारोंके लिये संघर्ष, राजनीति अथवा सेवाका पाठ पढ़ानेवाले तो अनेकों महानुभाव माध्यम तथा मञ्च हुए हैं और हैं; पर इतने व्यापक स्तरपर जगत्में आस्तिकताकी प्रतिष्ठा कर दिखाने तथा हमारे सम्पूर्ण जातीय जीवनके आधारभूत धर्मग्रन्थोंको घर-घरमें पहुँचा देनेका महान् कार्य तो केवल श्रीभाईजी ही सफलतापूर्वक कर पाये हैं। उनकी पावन स्मृतिमें उनके मङ्गलमय विचारोंके विश्वव्यापी प्रचार-प्रसार, उनकी मधुमयी पावन स्मृतिके स्थायित्व एवं उनकी छत्रछायामें पनपे-बढ़े हुए दीन-हीनोंकी सेवाके कार्यको गतिमान् रखने तथा बढ़ानेका प्रयास करना हम सबका पवित्र कर्तव्य है। वस्तुतः भगवदास्था ही तो इस देशकी आत्मा है।"

श्रीभाईजीके भगवद्-धाम पधारनेके पश्चात् जब प्रथम बार श्रीगुरुजी गोरखपुर पधारे थे, तब गाड़ीसे उतरते ही वे सर्वप्रथम अपने प्रिय धर्म तथा संस्कृतिकी गौरव-वृद्धिमें अहर्निश संलग्न अपने समर्थ सखा—अग्रजतुल्य श्रीभाईजीके अपनी इहलीला समेट लेनेके समयसे सतत रिसते हुए अपने हृदयकी अन्तर्वेदनाको परिवारके सदस्योंके साथ मिलकर शान्त करने और अपने तथा घरमें सभीके हृदयके भारको हल्का करने-करानेके लिये वे गीतावाटिकामें आये थे। श्रीभाईजीकी पावन समाधिपर श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हुए उनके अदर्शनकी व्यथासे श्रीगुरुजीकी आँखें भर-भर आती थीं। यह कार्य सम्पन्न हो जानेके पश्चात् ही उन्होंने अपने अन्य सब कार्यक्रम सम्पादित किये थे।

श्रीभाईजीके सांनिध्यमें अपना शेष जीवन व्यतीत करनेकी सदिच्छासे मैंने स्वयं लगभग दस वर्ष पूर्व जब उनसे मुझे कार्य-मुक्त करनेकी प्रार्थना की थी, तब अनुमति देते हुए उन्होंने मुझसे कहा था—'श्रीभाईजी-जैसे संत-शिरोमणि परम भक्तके चरणोंमें बैठकर भक्तिका पाठ यदि सीख सको तो वह मङ्गलकारी ही होगा; क्योंकि भगवान्के पथपर चलनेकी चेष्टा करना ही तो हम सबका सनातन उद्देश्य है।'

लगभग १७-१८ वर्ष पूर्वकी बात है। वर्धाके निकट सिन्दी नामक ग्राममें संगठनके सभी प्रमुख कार्यकर्ताओंको अपनी समग्र विचारधारासे अवगत कराके प्रशिक्षण देनेके लिये विशिष्ट आयोजन किया गया था। देशभरके अन्य कार्यकर्त्ताओंके साथ श्रीअटलबिहारी वाजपेयी तथा स्व० पण्डित दीनदयाल उपाध्याय भी संघ-कार्यकर्त्ताओंके रूपमें वहाँ उपस्थित थे। अपनी तेजस्विनी वाणीमें सभी कार्यकर्त्ताओंके मानस-पटलपर श्रीगुरुजीने एक ऐसी अजेय, अभेद्य संगठित शक्तिका मनोमुग्धकारी चित्र अङ्कित कर दिया था, जो इस देशको समृद्ध तथा समुन्नत करती हुई प्राचीन भारतीय ऋषियोंके आदर्शको सम्मुख रखकर, विश्वभरमें भारतीय तत्त्व-चिन्तनकी विजयपताका फहरानेकी अदम्य लालसासे अभिभूत होकर मचल उठेगी और जिस शक्तिका आधार होंगे—एक ही भावसे अनुप्राणित और एक ही लक्ष्य लेकर एक आदेश-निर्देशपर अपने सर्वस्वकी बाजी लगा देनेवाले, त्यागमय, निष्ठावान्, सर्वगुणसम्पन्न, चरित्रवान् तथा अनुशासनबद्ध तरुण। भाषणकी समाप्तिपर प्रश्नोत्तर-कालमें श्रीअटलजीने गुरुजीसे सीधा प्रश्न किया था कि 'शक्तिका स्वभाव है कि एक स्थानपर केन्द्रित होते ही वह प्रायः पाशविक हो उठती है। आपके द्वारा वर्णित प्रचण्ड शक्ति पाशविक नहीं बन जायगी, इसकी गारंटी क्या है?' तत्क्षण भावभरी ऋषिमुद्रामें श्रीगुरुजीने उत्तर दिया था कि 'जिस शक्तिका अधिष्ठान आध्यात्मिक होता है, वह कभी पाशविक नहीं हो सकती। हमारा यह अधिष्ठान न टूटने पाये, केवल इसीकी चिन्ता करो।' उनके वे शब्द आज भी वहाँ उपस्थित लोगोंके हृदय एवं मस्तिष्कमें गूँजते रहते हैं।

उसी प्रसङ्गपर अपने समस्त कार्यकर्त्ताओंको निरभिमान एवं अत्यन्त विनीत बननेके लिये प्रबुद्ध करते हुए श्रीगुरुजीने इस आशयके भाव व्यक्त किये थे—'हमारे मनमें कभी भी कर्तृत्व-अभिमान जाग्रत् होनेपर यदि हम आँख उठाकर जगद्गुरु आद्य शंकराचार्यके जीवनपर दृष्टिपात करेंगे तो

हमारा समस्त अभिमान गलकर पानी-पानी हो जायगा। हम जरा कल्पना तो करें कि जिन एकाकी दंडधारी संन्यासीने अपने अल्प-से जीवन-कालमें सम्पूर्ण समाजको एक सूत्रमें बाँधनेके लिये समूचे देशको अपने पगोंसे नाप डाला, चारों कोनोंमें चार मठोंकी स्थापना की, उनकी यात्राका विधान किया; अनेक सिद्धान्त-ग्रन्थोंका प्रणयन किया तथा यह सब करके केवल ३२ वर्षकी अल्पायुमें अपनी जीवनलीला भी पूर्ण कर दी, उन्हें देखते हुए हमने किया ही क्या है, जिसपर हम गर्व करें !'

लगातार अपने जीवनके कम-से-कम ३५ वर्षोंतक नित्य-प्रति प्रातः-सायं 'नमस्ते सदा वत्सले मातृभूमे' मन्त्रका स्वयं एवं लाखों कण्ठोंसे एक ही समयमें एक स्वर तथा पद्धतिसे सस्वर पाठ करते-कराते श्रीगुरुजी-जैसे सत्पुत्रका अपनी मातृभूमिसे इस सीमातक तादात्म्य स्थापित हो गया था कि देशपर किसी भी अन्तर्बाह्य आघातकी प्रतिक्रिया उनके शरीरपर होने लगती थी। देश-विभाजनके कारण मातृभूमिके अङ्गोंके विच्छेदके समयसे ही उनकी दोनों भुजाओंमें पीड़ा रहने लगी थी। सब प्रकारके उपचार किये जानेपर भी दोनों हाथोंको ऊपर उठा पानेमें आत्यन्तिक कष्टका अनुभव उन्हें जीवनके अन्ततक रहा। वे यही कहा करते थे कि 'यह दर्द तो मेरे जीवनका साथी है।' चीनद्वारा भारतीय सीमाका अतिक्रमण किये जानेपर श्रीगुरुजीने शासनको सूचना मिलने अथवा स्वीकार करनेसे पूर्व ही समाजको अग्रिम सूचना दे दी थी, यह सर्वविदित है। पर उनकी जानकारीका आधार था, मातृभूमिके कण-कणके साथ उनकी पूर्ण एकात्मता। देह-त्यागके लगभग एक घंटा पूर्व उनके श्रीमुखसे सुने गये अन्तिम शब्द थे—'भारतमाताकी जय'। अर्धमूर्च्छित अवस्थामें अन्तिम अपनी सायंकालीन नित्य पूजामें वे इतने ही शब्द उच्चारण कर पाये थे।

श्रीगुरुजी आध्यात्मिक दृष्टिसे जिस उच्च स्थितिपर आरूढ़ थे, उसका यत्किंचित् आभास उनके व्यक्तिगत आदर्श जीवन तथा व्यवहारका अवलोकन करनेसे तो मिलता ही है, परंतु लाखों अनुशासनबद्ध तरुण अनुयायियोंके निर्विवाद नेताके रूपमें नेतृपदसे उन्होंने निर्णायक घड़ियोंमें समय-समयपर जो महत्त्वपूर्ण निर्णय दिये अथवा विचार व्यक्त किये, वे वस्तुतः उनकी स्वरूप-स्थितिपर अत्यधिक प्रकाश डालते हैं। गम्भीरतम संकट एवं भीषणतम उत्तेजनाके क्षणोंमें भी स्वयं शान्त, धीर तथा अक्षुब्ध बने रहकर सम्पूर्ण संगठनको अनुशासित एवं शान्त बनाये रखनेकी जो विलक्षण सामर्थ्य श्रीगुरुजीके जीवनमें दिखायी देती है, वह अत्यन्त सराहनीय है।

निर्भीकता और सत्य तथा सिद्धान्त-निष्ठा तो मानो उनकी नस-नसमें समायी हुई थी। संगठनपर लगे हुए प्रतिबन्धको हटवानेके सम्बन्धमें उन्होंने तत्कालीन प्रधानमन्त्री पं० नेहरू, सरदार पटेल एवं भारतीय शासनके उच्चाधिकारियों-से जिस दृढ़ता और निर्भीकताके साथ पत्र-व्यवहार किया था; वह उनके अभयमें नित्य प्रतिष्ठित होनेका द्योतक है।

देहत्यागसे पूर्व दो अप्रैलको उन्होंने जो दैन्यभरे अन्तिम दो ऐतिहासिक पत्र संघ-बन्धुओंको लिखे थे, वे अत्यन्त मार्मिक हैं। उन्होंने अपने-आपको—अपने व्यक्तित्व-को सर्वथा विलीन करके अपने ध्येयको ही सर्वोपरि एवं व्यक्तिके स्थानपर तत्त्वको प्रधानता देनेका जो आदर्श सम्मुख रखा है, वह अत्यन्त दुर्लभ है।

उनकी निरभिमानिता एवं विनयशीलताका जो रूप उनके अनुयायियोंके मानस-पटलपर अङ्कित है, वह जीवनभर उन्हें मुग्ध बनाये रखेगा। संघपर लगे प्रतिबन्धके कारण संगठनकी आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। ऋणभार भी था। श्रीगुरुजीके प्रति जन-सामान्यकी श्रद्धाको दृष्टिगत रखकर केन्द्रीय कार्यकारी-मण्डलने १९५६में उनकी पूर्वसम्मतिके बिना ही उनके सार्वजनिक अभिनन्दन एवं श्रद्धा-निधिके रूपमें उन्हें थैली भेंट किये जानेकी योजना बना ली। श्रीगुरुजीके सम्मुख उसका ब्योरा रखकर उनकी स्वीकृति माँगनेपर श्रीगुरुजीने व्यक्तिगत सम्मानके प्रति अत्यधिक वितृष्ण रहनेपर भी संगठनके आज्ञाकारी स्वयं-सेवकके रूपमें उसके हितकी भावनासे इसे स्वीकार कर लिया। स्थान-स्थानपर उनकी जय-जयकार, सार्वजनिक अभिनन्दन, पुष्प-वृष्टि तथा लगभग २१ लाख रुपयेकी श्रद्धा-निधिके अर्पणके रूपमें यह कार्य सम्पन्न हुआ। परंतु कार्यक्रमकी समाप्तिपर देशके प्रमुख कार्यकर्ताओंके सम्मुख इस समूचे व्यक्तिगत सत्कारके वातावरणसे उत्पन्न अपनी अन्तर्वेदनाको जिन मर्मभेदी शब्दोंमें श्रीगुरुजीने व्यक्त किया, उसने सबको रुला दिया। उनके शब्दोंका भाव यह था—'संघनिर्माता डा० हेडगेवारजीके जीवनकालमें उनके गलेमें पुष्पमाला डालनेका साहस कभी किसी संघ-बन्धुने

नहीं किया । केवल उनकी शवयात्राके समय ही उनके शवपर पुष्प चढ़ाये गये और मैं ऐसा अभागा हूँ कि उन्हींके आसनपर आसीन मुझको मेरे ही स्वयंसेवक फूलमालाओंसे लादकर मेरा सार्वजनिक अभिनन्दन करके मेरी जय-जयकार कर रहे हैं ! इससे बड़ा दुर्भाग्य मेरा और क्या होगा ? पूज्य डा० हेडगेवार साहबके ५१ वर्षकी अल्पायुमें जीवन-लीला समेट लेनेपर उनपर पुष्प चढ़ाये गये थे और मेरी आयुके भी ५१ वर्ष पूरे होनेपर मेरे जीवन-कालमें मेरी संनिधिमें यह आयोजन किया जा रहा है।'……पुनः वातावरणके गाम्भीर्यको कम करते हुए उन्होंने व्यक्तिपूजा तथा सस्ती नारेबाजी तथा प्रचार-प्रणालीका परित्याग करनेकी प्रेरणा दी थी । चरण-स्पर्श करानेमें उनकी तीव्र अरुचि देखकर किसीको यह करनेका साहस ही नहीं हो पाता था ।

श्रीगुरुजीके कारामुक्त होनेपर लक्षावधि लोगोंने उनके स्वागतमें अपने पलक-पाँवड़े बिछा दिये थे । अपार भीड़में उनके स्वागतके वातावरणमें एक सम्माननीय दण्डी संन्यासीके उनके सन्मुख आते ही श्रीगुरुजीने उन्हें साष्टाङ्ग दण्डवत्-प्रणाम किया । उनके निषेध करनेपर श्रीगुरुजीने उत्तर दिया—'श्रेष्ठ संत-महात्माओंके चरणोंमें नत होना हमारी प्राचीन परम्परा है । मैं तो उसका निर्वाहमात्र कर रहा हूँ ।'

श्रीगुरुजीने हिंदू-संस्कृतिकी गरिमाकी पुनः प्रतिष्ठाके लिये अपनी ओजस्विनी वाणीमें उसका जो विवेचन किया है, उससे प्रभावित होकर उच्चशिक्षाप्राप्त हजारों युवकोंने इसकी गौरव-वृद्धिको ही अपने जीवनका एकमात्र लक्ष्य बना लिया । उन्हीं श्रीगुरुजीको अनावश्यक विवादमें घसीटनेके लिये जब अपने देशके एक धार्मिक नेताने यह प्रश्न किया कि 'तुम्हारा हिंदू-संस्कृतिका स्वरूप क्या है ?' तो अत्यन्त विनीत शब्दोंमें श्रीगुरुजीने उनको सम्मान देते हुए यह उत्तर दिया था—

'हम तो हिंदू-संस्कृति नामक रत्नमञ्जूषाके प्रहरी हैं और लाठी लेकर उसकी रक्षाके कार्यपर नियुक्त चाकरमात्र हैं और इस बातके लिये सचेष्ट हैं कि यह सम्पत्ति चोरोंके हाथ न लगने पाये ! उस मञ्जूषामें रखे हुए रत्न, मोती, अथवा स्वर्ण-अलंकार—ये सब तो आप-जैसे विद्वज्जनोंकी सम्पत्ति हैं । आप ही जानें, इस मञ्जूषामें क्या भर रखा है ! मैं अनभिज्ञ उसे क्या जानूँ ।'

काशीके भव्य सार्वजनिक समारोहमें श्रीगुरुजीका भाषण सुननेके लिये पधारे हुए महामना पण्डित मदनमोहनजी मालवीयपर दृष्टि पड़ते ही श्रीगुरुजीके धाराप्रवाह भाषणको बीचमें ही विराम देकर और मञ्चसे नीचे उतरकर पूज्य श्रीमालवीयजीके चरण-स्पर्श करके पुनः भाषण प्रारम्भ कर देनेकी घटना प्रख्यात है । ऐसी विलक्षण थी गुरुजनों तथा धर्माचार्योंके प्रति उनकी श्रद्धा तथा विनयशीलता ।

अपनी दुर्बलताओंसे जूझने तथा उनसे ऊपर उठनेमें अपनेको असमर्थ अनुभव करनेवाले निराश व्यक्तियोंको धैर्य बँधाते हुए तथा अपने सहयोगियोंको स्वयं अपने संगठनकी तीव्र आलोचना या विरोधमें प्रवृत्त कतिपय बन्धुओंके प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाने, अपितु सदैव उन्हें गले लगानेके लिये तत्पर रहनेकी प्रेरणा देते हुए वे प्रायः यह उद्धरण दिया करते थे कि 'Every saint had a past and every sinner has a future; अर्थात् आजका संत कल भी संत ही था, यह आवश्यक नहीं । इसी प्रकार यह भी आवश्यक नहीं कि आजका पापी सदैव पापी ही रहे । अतः इस समय विरोधी अथवा आलोचक बने हुए किसी भी कार्यकर्ताके प्रति न केवल हममें क्षमाशीलता ही होनी चाहिये, अपितु भूतकालमें उसके द्वारा की गयी सेवाओंके प्रति हमें सदैव कृतज्ञ रहना चाहिये ।

समाजमें चारों ओर प्रसृत सहस्रों भूखों एवं निराश्रित प्राणियोंकी—'दरिद्रनारायण'की—दीन-हीन दशाका वर्णन करते हुए करुणाविगलित हृदय एवं अवरुद्ध कण्ठसे वे कहा करते थे—

"हमारे चारों ओर सहस्रों मानव प्राणी हैं, जो भूखे एवं निराश्रित हैं, जो जीवनकी निम्नतम आवश्यकताओंसे भी वञ्चित हैं और जिनकी कष्ट-कथाएँ पाषाणके समान कठोर हृदयोंको भी पिघला देंगी । निश्चय ही वह ईश्वर है, जिसने गरीब, निराश्रित एवं पीड़ितका रूप धारण किया है । उसने यह रूप क्यों धारण किया है ? क्या वह कुछ चाहता है ! वह तो सम्पूर्ण शक्तियोंका, सम्पूर्ण ज्ञानका स्वरूप ही है तथा सबका स्वामी है । फिर वह कौन-सी वस्तु है, जिसे वह चाहता है ? वह हमें अपनी सेवाके लिये अवसर प्रदान करने उन स्वरूपोंमें आता है । श्रीरामकृष्ण परमहंसने उन्हें 'दरिद्रनारायण' कहा है ।

× × × ×

"जिसने समाजमें परमेश्वरके विराट् रूपका साक्षात्कार किया है और जो उसकी सेवामें जीवन-सर्वस्व लगाकर दक्ष रहता है; उसे भूखकी ज्वालासे दग्ध हो रहे उदरके लिये फिरनेवाले लोग, जो जीवनकी प्रधान आवश्यकताओंको पूरा करनेके साधनोंसे वञ्चित हो गये हैं और जिनमें एक-एककी कहानी सुनकर और दशाको देखकर पाषाण-हृदय भी फट जाय, ऐसी लाखोंकी संख्यामें इतस्ततः फैले हुए दीन-हीन निराश्रित प्राणी परमात्माके सर्वप्रथम पूजनीय रूप ही दिखायी देंगे और वह उनकी सेवामें सम्पूर्ण शक्ति लगानेके लिये विकल हो उठेगा।

"नरके रूपमें प्रकट नारायणको हम पहचानें। उसकी सुख-सुविधाके लिये तन-मनसे कुछ कष्ट उठानेका प्रसङ्ग भी आये तो उसे भगवत्कृपा-प्रसाद समझकर सहर्ष धारण करें। उसके निमित्त की गयी दौड़-धूप और उठायी गयी असुविधामें त्यागकी नहीं, पूजाकी भावना चाहिये। सब कुछ करके भी मैंने किसीपर उपकार नहीं किया, केवल स्वाभाविक कर्तव्य पूर्तिमात्र की है, यही दृढ़ धारणा चाहिये। इसमें अहंकार-आत्मश्लाघाके लिये कोई स्थान नहीं है।"

उनके इन गूढ़ आशय तथा भावभरे उद्बोधक हृदयोद्गारोंने न जाने कितने लोगोंको देशभरमें स्थान-स्थानपर सेवा, शिक्षा, चिकित्सा आदिके कितने ही केन्द्र निर्माण एवं संचालन करनेकी सत्प्रेरणा दी है।

विभिन्न राजनीतिक पक्षों अथवा सामाजिक संस्थाओंके वरिष्ठ नेताओं अथवा अन्यान्य सहयोगी या विरोधी व्यक्तियोंके व्यक्तिगत जीवनकी आलोचना अथवा उथली चर्चा उन्हें कतई पसंद नहीं थी।

ईसाई मिशनरियोंद्वारा दरिद्र तथा अशिक्षित वनवासी जातियोंके अंधाधुंध धर्म-परिवर्तनसे क्षुब्ध तथा चिन्तित होकर मैं उन दिनों जहाँ-कहीं, जब कभी और जिस-किसीके समक्ष उनके कृत्योंकी ही आलोचना करता रहता था। मेरी इस वृत्तिको देखकर विनोद करते हुए श्रीगुरुजीने मुझे 'मिस्टर पादरी' कहकर एक बार सम्बोधित किया, जिसके कारण मुझे कई सहयोगी भी 'पादरी साहब' कहने लगे थे। मुझे पास बुलाकर मीठी झिड़की देते हुए श्रीगुरुजीने यह प्रबोध दिया था कि 'क्या ईसाई मिशनरी तुम्हारे आराध्य या इष्टदेव हैं, जो तुम दिन-रात उन्हींका चिन्तन, मनन तथा कथन किया करते हो! यह करते-करते तो तुम स्वयं ही उसी साँचेमें ढल जाओगे और समाजमें भी व्यर्थका आतङ्क निर्माण करोगे। उसके स्थानपर अपने समाजकी अन्तर्निहित शक्तिका स्मरण करो। अपने महापुरुषों और धर्मग्रन्थोंकी शरण लो। उनका नाम और कीर्ति घर-घरमें पहुँचानेका उद्योग करो। अभावात्मक नहीं, भावात्मक कार्यसे ही अभिलषित परिणाम निकलेगा; कोरी आलोचनासे नहीं।' उनकी इसी प्रेरणाके फलस्वरूप मध्यप्रदेशके जशपुर आदि क्षेत्रोंमें सैकड़ों रामायण-मण्डलियोंका निर्माण होकर ग्राम-ग्राममें श्रेष्ठ संत-महात्माओंका सार्वजनिक स्वागत-सत्कार आयोजित किया गया था एवं श्रीभाईजीकी कृपासे प्राप्त रामायणकी प्रतियोंको घर-घरमें पहुँचाकर उसके व्यक्तिगत तथा सामूहिक पाठ-पारायणकी प्रणालीका ग्राम-ग्राममें प्रचलन हुआ था। कल्याण-आश्रम, जशपुरके तत्त्वावधानमें १९६३ में महावीरी झंडोंके साथ कीर्तन करती हुई वनवासी भक्तोंकी अनेकों रामायण-मण्डलियोंके महासम्मेलनमें श्रीगुरुजी स्वयं उपस्थित थे।

ऐसे कितने ही दैवी सद्गुणोंसे श्रीगुरुजीका सम्पूर्ण जीवन अलंकृत है, जिन्हें देखते हुए यह दृढ़तापूर्वक कहा जा सकता है कि वे निश्चितरूपेण एक आध्यात्मिक विभूति थे। श्रीगुरुजीने हिंदू-संस्कृतिके अमरत्वका रहस्य वर्णन करते हुए कहा था—'यह बात अति स्पष्ट है कि हमारे राष्ट्रीय अस्तित्वका आधार राजकीय सत्ता कभी नहीं रही'.....'राजकीय सत्ताधारी हमारे समाजके आदर्श कभी नहीं थे। वे हमारे राष्ट्र-जीवनके आधारके रूपमें कभी स्वीकृत नहीं हुए। सम्पत्ति एवं सत्ताके ऐहिक प्रलोभनोंसे ऊपर उठे हुए, श्रेष्ठ गुणोंसे सम्पन्न एवं एकात्मतासे युक्त समाजकी स्थापनाके लिये अपनेको समग्रभावेन समर्पित करनेवाले संत-महात्मा ही इसके पथ-प्रदर्शक रहे हैं। वे धर्म-सत्ताका प्रतिनिधित्व करते थे।.....'यही धर्म-सत्ता समाजको छिन्न-विच्छिन्न होनेसे सदैव बचाती रही।'

श्रीगुरुजीने अपने विमल आदर्श जीवन एवं कुशल नेतृत्वसे सहज ही हमारे राष्ट्र-जीवनके आधार उन श्रेष्ठ संत-महात्माओंमें एक वरिष्ठ स्थान प्राप्त कर लिया है। ऐसे मेधावी निर्भ्रान्त क्रान्तदर्शी किसी भी समाजको बड़े सौभाग्यसे प्राप्त हुआ करते हैं। अनेक भाषाओंपर असाधारण प्रभुत्व-सम्पन्न, अर्वाचीन तथा प्राचीन विचारधाराओंमें पारंगत, नीर-क्षीर-विवेचक, ओजस्वी वक्तृत्व-शक्तिके धनी, निर्भीक तथा विनीत महापुरुष क्वचित् ही दिखायी देते हैं।

कार्यक्रमोंमें सदैव ठीक समयसे पहुँचनेके आदर्शकी

रक्षाके लिये मोटर विगड़नेकी स्थितिमें साइकिलतकका उपयोग कर लेनेवाले, समयके पाबंद, धर्म तथा नैतिक मूल्यों एवं सदाचारके पुनः प्रतिष्ठाता उन बालब्रह्मचारी, निष्काम कर्मयोगी, भक्तहृदय तपस्वीके तिरोभावसे राष्ट्रकी अपार क्षति हुई है। इस क्षतिकी यत्किंचित् पूर्ति केवल एक ही उपायसे सम्भव है कि अपनी मातृभूमि, प्रिय धर्म तथा संस्कृतिको संसारमें उच्चतम समादरके आसनपर आसीन देखनेके साथ अन्तर्हृदयमें सँजोकर रखनेवाले सभी सत्पुत्र उनके पदचिह्नोंपर चलकर, उनके आदर्श जीवनपर दृष्टि टिकाकर, उनके द्वारा निर्दिष्ट आध्यात्मिक अधिष्ठानको दृढ़तासे पकड़े रहकर उनके सपनोंको साकार करनेमें प्राण-पनसे जुटे रहें।

उन ऋषिप्रवरके पादपद्मोंमें शत-शत प्रणाम, शत-शत वन्दन!

कैसे होता है वैराग्य ?

(लेखक—श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

'रानी, तुम रो रही हो क्या ?'

पैरपर गिरे गरम-गरम आँसूकी बूँदसे चौंककर राजकुमारने पूछा। इतना सुनते ही पैर दबाती हुई रानी फफक-फफककर रो पड़ी।

'आखिर बात क्या है ? क्यों रो रही हो तुम ?' अत्यन्त आग्रहपूर्वक पूछा राजकुमारने।

'भैयाको वैराग्य हो गया है।'—सिसकती हुई रानी बोली।

'कैसा वैराग्य ?'

'उन्हें तीस रानियाँ हैं। रोज एक रानीको वे छोड़ते चल रहे हैं। तीस दिन पूरे होते ही वे तीसों रानियोंको छोड़कर जंगलके लिये चल देंगे।'

राजकुमार हँसा ठठाकर—'ऐसे होता है वैराग्य ?'

'तब कैसे होता है वैराग्य ?'—रानीने अचकचाकर पूछा।

'बताऊँ, कैसे होता है वैराग्य ?'—कहकर राजकुमार पलंगपरसे उतरा। धोतीका एक सिरा फाड़कर लँगोटी लगायी। नंगे बदन, नंगे पैर आधी रातको महलसे निकल-कर जंगलकी ओर चल पड़ा। जाते-जाते कहता गया—'ऐसे होता है वैराग्य।'

हाहाकार मच गया महलमें। रानीके भाईने सारा प्रसङ्ग सुना तो वह भी लँगोटी लगाकर निकल पड़ा जंगलकी ओर!

× × ×

वैराग्य कैसे होता है, उसका यह एक उदाहरण है। किसीको धीरे-धीरे वैराग्य होता है, किसीको एक क्षणमें। वैराग्यके अनेक प्रकारोंमें तीव्रतम वैराग्य ऐसा ही होता है। जिस क्षण मानवके चित्तमें वैराग्यकी भावना जाग्रत् होती है, उसी क्षण वह घर-द्वार, स्त्री-पुत्र, राज-पाट—सब कुछ छोड़, बुद्धकी भाँति वैभवपर लात मारकर चल देता है। जिस क्षण मानवके मानसमें जगत्की नश्वरताकी प्रतीति जम जाती है, उसी क्षण वह वैराग्यका मार्ग ग्रहण कर लेता है। कोई उसका रास्ता रोक नहीं सकता। पर वैराग्यकी यह तीव्रतम स्थिति बिरलोंको ही प्राप्त होती है। अनेक जन्मोंका पुण्य-प्रसाद होती है यह।

× × ×

रामकृष्ण परमहंस एक अत्यन्त सुन्दर दृष्टान्त देते थे—श्मशानमें अर्धरात्रिके समय एक साधक शवपर बैठकर जगदम्बाका आवाहन कर रहा था। अचानक कोई भयानक दृश्य देखकर वह शवसे उठकर भाग चला पागलकी भाँति।

वहींपर एक अन्य व्यक्ति पेड़पर बैठा यह तमाशा देख रहा था। साधकको पागल बनकर भागते देख कुतूहलवशात् वह पेड़से उतरकर शवपर आ बैठा। उसने जैसे ही जगदम्बाका आवाहन किया कि जगदम्बा प्रकट हो गयीं।

साधक तो देखकर हैरान!

बोला—'माँ, अजीब गोरखधंधा है तेरा! जो साधक इतने मनोयोगसे, पता नहीं, कितने वर्षोंसे, तेरी साधना कर रहा था, उसे तूने दर्शन नहीं दिये और उसे पागल बनाकर भगा दिया! और मैं केवल कुतूहलवश शवपर आ बैठा और मेरे आवाहनसे तूने पलभरमें आकर मुझे दर्शन दे दिये!'

जगदम्बा बोली—'बेटा, तू नहीं जानता कि पिछले कितने जन्मोंमें तू भी इसी प्रकार पागल होकर भाग चुका है। तब आज तू इस स्थितिपर पहुँच गया है कि तेरे आवाहन करते ही मुझे दर्शन देनेके लिये विवश होना पड़ा।'

× × ×

कहते हैं कि वैराग्यपरायण शुकदेव जन्मके बाद ही घरसे निकलकर चल पड़े। व्यास महाराज पीछे दौड़े—'बेटा, जरा मेरा भी तो ख्याल करो, मैं तुम्हारा पिता हूँ।'

शुकदेव बोले—'कौन किसका पिता, कौन किसका

बेटा ? कितने जन्मोंमें कितने पिता-माता मिले, कोई पार है ? झूठा है यह सारा मोह-जाल !'

× × ×

कितने ही महापुरुषोंमें बचपनसे ही वैराग्य होता है।

खाने-पीनेमें, आचार-व्यवहारमें, जीवनके सभी कार्योंमें उस वैराग्यकी झाँकी मिलती है। और हम हैं कि वर्षोंसे 'विराग'की बात करते आते हैं और लिपटे रहते हैं हम 'राग'-की साधनामें। रागकी, भोग-विलासकी ललक हमारे मानसमें छिपी बैठी है, वह विरागकी ओर बढ़ने ही नहीं देती।

तीव्र वैराग्य हमें होता नहीं, सामान्य वैराग्य भी कभी एकाध क्षणके लिये होता है। इस 'श्मशान-वैराग्य'की ओर भी हम मुँह बिचकाकर उसे टाल देते हैं।

जरूरत है इस सामान्य और क्षणिक वैराग्यको धीरे-धीरे बढ़ाते चलनेकी। वैराग्यका अभ्यास वैराग्यको दृढ़ बनानेमें सहायक हो सकता है—

करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत-जात ते सिलपर होत निसान॥

× × ×

'कैसे होता है वैराग्य !'—यह एक टेढ़ा प्रश्न है।

इसके लिये सभीपर एक ही सूत्र लागू नहीं होता।

हाइड्रोजन और आक्सीजन अमुक-अमुक मात्रामें मिला देनेसे पानी बन जायगा—विज्ञानका यह सूत्र ज्ञानके क्षेत्रमें लागू नहीं होता।

किसी भी छोटी-बड़ी घटनासे, दृश्यसे, प्रसङ्गसे, वाक्यसे, कथासे वैराग्य हो सकता है; परंतु एक व्यक्तिको जिस बातसे क्षणभरमें वैराग्य हो जाता है, उसीसे दूसरेपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

किसीकी पत्नी मरती है, वह मूँड़ मुँडाकर वैरागी बन जाता है। दूसरा व्यक्ति पत्नीके मरनेपर रोता है, ढाढ़ें मार-मारकर रोता है, पर चार दिन बाद चाँईमाँई करके दूसरी पत्नी ले आता है। पहली पत्नीका फोटो अपने अलबममें चिपकाकर रख लेता है अथवा बैठकमें टाँग देता है और समझ लेता है कि उसकी फर्जअदाई हो गयी।

× × ×

कभी-कभी छोटी-छोटी बातें; छोटी-छोटी कहानियाँतक वैराग्यका कारण बन जाती हैं। नमूना लीजिये—

इटावामें एक डिप्टी कलक्टर थे—सप्रू।

रातको नाई पैर दाब रहा था। फर्माइश की—'नाई ठाकुर, कोई कहानी सुनाओ।'

उसने शुरू किया—"अरब देशमें एक बादशाह था, शौकीन। एक दिन बाँदी उसका पलंग बिछा रही थी। रेशमकी नेवारसे भरे सोनेके पलंगपर कालीन बिछाकर उसने पुष्प-शय्या सजा दी तो सहज ही उसका मन मचल पड़ा—'बादशाह सलामत तो घंटेभर बाद पलंगपर लेटने आयेंगे, पाँच मिनट मैं भी क्यों न इस पलंगपर लेटकर मजा ले लूँ।'

गर्मीका मौसम ! खुली छतकी ठंडी हवा। फूलोंकी खुशबू ! लेटते ही नींदने धर दबाया। पाँच मिनटका एक घंटा बनते देर नहीं लगी।

बादशाहने आकर देखा तो पलंगपर बाँदी खर्राटें ले रही थी; जगाया उसे तो थरथर काँपती हुई वह बादशाहके कदमोंमें लोट गयी। पर बादशाहने उसे माफ नहीं किया।

सजा बोली गयी—६० मिनट सोनेके लिये ६० बेंत।

बेगम खुद बेंत लगाने लगी। पर यह क्या ?

तीस बेंत लगनेतक तो बाँदी रोती रही, पर उसके बाद हँसने लगी। आखिरतक हँसती ही रही।

बादशाह तो हैरान ! बेंतोंकी मार पड़ रही है, फिर भी यह हँस रही है। ऐसा क्यों ?

कारण पूछा तो बाँदी बोली—'जहाँपनाह, पहले तो बेंतोंकी मारसे मैं रो रही थी, पर बादमें मैंने सोचा कि मुझे तो ६० मिनट इस पलंगपर लेटनेके लिये साठ बेंत लग रहे हैं, लेकिन बादशाह सलामत और मलका तो सारी रात ६-६, ८-८ घंटे इस पलंगपर सोते हैं और रोज सोते हैं; इन दोनोंको कितने बेंत लगेंगे ? मुझे बेंत लगानेवाले नहीं जानते कि उन्हें कितने बेंत पड़ेंगे। मुझे पलंगपर लेटे देखकर जिस तरह आपलोग नाराज हुए, आपको भी तो पलंगपर सोते देख अल्लाह ताला नाराज होता होगा। यही था मेरे हँसनेका सबब !······'

'तोबा ! तोबा !' बाँदीकी बात बादशाहका कलेजा काट गयी। उसने अपना ताज उतारकर फेंक दिया, जामा फाड़कर फेंक दिया, जूते निकालकर फेंक दिये। कफनी पहनकर चल पड़ा जंगलको—फकीरी करने।"

कहानी सुनी तो सप्रू साहबका भी वैसा ही हाल हो गया। बोले—'कितने पतेकी बात है कि सजा देनेवाले नहीं जानते कि उन्हें क्या सजा मिलनेवाली है।'

इस्तीफा देकर सप्रू साहब चल पड़े यमुनाके किनारे साधना करने। मोटा सोंटा खटखटाते रहते, कमली ओढ़े खटखटा बाबा बन गये वे।

× × ×

राम गये थे तीर्थयात्रा करने।

लौटनेके बाद राजा दशरथने एक दिन उन्हें दरबारमें बुलवाया। सेवकोंने आकर कहा—"महाराज! पता नहीं, क्या हो गया रामको! उनका मन उदास रहता है। सुंदर स्वादिष्ट पदार्थोंको देखकर उनके नेत्रोंमें आँसू भर आते हैं। विलास-सामग्री उन्हें फूटी आँख नहीं सुहाती। 'सम्पत्तिसे क्या होगा? विपत्तिसे क्या होगा? घरसे क्या होगा? अन्य पदार्थोंसे क्या होगा?—ये सब मिथ्या हैं—' ऐसा कहकर वे गुमसुम होकर एकान्तमें बैठ जाते हैं। भोगोंमें उनकी रत्तीभर आसक्ति नहीं। किसी काममें उनकी प्रवृत्ति नहीं। किसी वस्तुका उन्हें अभिमान नहीं। किसी वस्तुकी उन्हें अभिलाषा नहीं। न किसी सुखसे उन्हें प्रसन्नता होती है, न किसी दुःखसे विषाद होता है। वे प्रायः कहते हैं कि 'लोग यह कहकर चिल्लाते हैं कि 'हाय, मैं मारा गया, मैं अनाथ हो गया'—फिर भी उन्हें वैराग्य नहीं होता, यह कैसे आश्चर्यकी बात है।' दिन-दिन वे दुबले होते जा रहे हैं। पीले पड़ते जा रहे हैं।'''"

विश्वामित्र यह सारा विवरण सुनकर बोले—'महाराज! इन लक्षणोंसे तो ऐसा लगता है कि रामको वैराग्य हो गया है—विचारमूलक वैराग्य।'

राम जब दरबारमें पधारे और उन्होंने अपने मानसकी स्थितिका विस्तारसे वर्णन किया तो यह बात स्पष्ट हो गयी कि 'दुःखदोषानुदर्शनम्'के चिन्तनसे उन्हें सच्चा वैराग्य हो चुका है। वैराग्यकी ऐसी शुद्ध भावनासे जो चित्त निर्मल हो जाता है, उसमें ज्ञान-प्राप्तिकी पात्रता आ जाती है।

योगवासिष्ठमें इसी ज्ञानका सागर लहरा रहा है। निर्वाण-प्रकरणके उत्तरार्द्धमें राम कहते हैं—

"वैराग्यसे बोधकी और बोधसे वैराग्यकी वृद्धि होती है। जिस बोधसे वैराग्य सम्पन्न होता है, वस्तुतः उसीका नाम बोध है। जिससे धन-स्त्री-पुत्र आदिकी सुख-सुविधा बढ़ती है, वह बोधके नामपर जडताकी ही स्थिति है। जिस पुरुषमें वैराग्य नहीं, उसकी विद्वत्ता, उसका बोध भी मूर्खता है। बोध और वैराग्यरूपी उत्कृष्ट सम्पत्तिका ही नाम 'मोक्ष' है।" (सर्ग० १९४)

× × ×

सचमुच वह बोध ही क्या, जिससे वैराग्यकी प्राप्ति न हो।

पर हममेंसे अधिकांश लोग वैराग्यकी बातें तो खूब करते हैं, जगत्की नश्वरतापर, जीवनकी क्षणभङ्गुरतापर, विषयोंकी निस्सारतापर घंटों धाराप्रवाह बोलते रहते हैं, पर वस्तुतः वैराग्यसे रहते हैं कोसों दूर। वसिष्ठ महाराजके शब्दोंमें हम हैं—ज्ञान-बन्धु, ज्ञानका उपहास करनेवाले अज्ञानके मूर्तिमान् प्रतीक।

ज्ञानबन्धुके लक्षणोंसे हम अपनेको मिलाकर देखें तो हमारा चित्र स्पष्ट हो जायगा—

व्याचष्टे यः पठति च शास्त्रं भोगाय शिल्पिवत्।
यतते न त्वनुष्ठाने ज्ञानबन्धुः स उच्यते॥
कर्मस्पन्देषु नो बोधः फलितो यस्य दृश्यते।
बोधशिल्पोपजीवित्वाज्ज्ञानबन्धुः स उच्यते॥
(निर्वाणप्रकरण, उ० २१। ३-४)

'ज्ञानबन्धु' वह है, जो ज्ञानको जीवनमें चरितार्थ नहीं करता। वह शिल्पीकी भाँति जीविकाके लिये भोग-प्राप्तिके लिये ज्ञानका उपयोग करता है।

"ज्ञानबन्धु वह है, जो तत्त्वज्ञानकी बातोंद्वारा दूसरोंको ठगना जान गया है। शास्त्रोंके अध्ययनसे उसे बोधकी प्राप्ति तो हुई, पर बोधके फलकी प्राप्ति नहीं हुई। बोधका फल होता है—विनाशशील भोगोंसे वैराग्य।"

× × ×

तात्पर्य क्या निकला?

१. यही कि वैराग्य तीव्रतम भी हो सकता है, सामान्य भी।

२. यही कि तीव्रतम वैराग्य क्षणभरमें सम्भव है, पर उसके लिये पिछली साधनाकी पूर्वपीठिका चाहिये।

३. यही कि सामान्य वैराग्य किसी भी छोटी-मोटी घटना, प्रसङ्ग, दृश्य, कथा एवं वाक्यसे सम्भव है। वैराग्यकी उस भावनाको अभ्यासद्वारा बढ़ाकर दृढ़ किया जा सकता है।

४. यही कि सच्चा और विवेकपूर्ण वैराग्य 'दुःखदोषानुदर्शनम्' से होता है। उसीसे ज्ञान-प्राप्तिकी पात्रता आती है।

५. यही कि ज्ञानकी, बोधकी सार्थकता वैराग्यकी वृद्धिमें है।

६. यही कि 'ज्ञानबन्धु' होना ज्ञानकी फजीहत करना है। ज्ञानका, बोधका फल है—विषयोंसे वैराग्य।

× × ×

वैराग्य हुआ है कि नहीं, इसकी कसौटी?

तुलसी बाबाने दे ही रखी है।

एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी॥
जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा॥
होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा॥
(मानस २। ९२। २-२½)

प्रेमोद्गार

(लेखक—पं० श्रीरामप्रतापजी अवस्थी शास्त्री)

सर्वैश्वर्यमय भगवान् भी जिसके स्पर्शसे विवश होकर अपने आपको भूल जाते हैं, वह मधुर वैवश्य ही 'प्रेम-तत्त्व' है। यहाँ विवशताका तात्पर्य दौर्बल्य या असामर्थ्य नहीं, माधुर्य-रस-सिन्धुमें आत्मनिमज्जन है। वह स्वसंवेद्य एवं मूकास्वादनवत् होनेके कारण वाणीका अविषय है। प्रेम न केवल प्यास है और न केवल तृप्ति। उसमें अनन्त प्यास भी है और अनन्त तृप्ति भी। वह प्रपञ्चके समान 'सत्त्वासत्त्वाभ्यां विलक्षणत्वेन अनिर्वचनीयम्' है या ब्रह्मके समान अवाङ्मनसगोचरत्वेन अनिर्वचनीय है। प्रेमकी अनिर्वचनीयता इन दोनोंसे भिन्न है। प्रेम 'असत्' कभी नहीं होता, प्रत्येक अवस्थामें 'सत्'-स्वरूप ही रहता है। इसलिये प्रेम जगत्के समान 'सत्त्वासत्त्वाभ्यां विलक्षणत्वेन अनिर्वचनीय' नहीं है। जगत्को 'सत्' भी नहीं कह सकते और 'असत्' भी नहीं; किंतु प्रेम 'सत्' है। ब्रह्मकी अनिर्वचनीयताका अर्थ यह है कि उसमें इन्द्रियों एवं मनकी गति नहीं है, लेकिन प्रेममें मनकी गति न हो तो प्रेम कैसा? प्रेम किसी भाषा, क्रिया, वस्तु, काल एवं देशमें आबद्ध होता तो उसका निर्वचन होता; वह तो सबमें है और किसीमें बँधा नहीं है। अपनेको भगवान्की मुट्ठीमें कर देना तथा उन्हें अपनी मुट्ठीमें कर लेना अथवा अपनेको उनका बना देना या उन्हें अपना बना लेना ही 'प्रेम' है। अतः उसका स्वरूप-लक्षण है—"भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते—भाव ही प्रगाढ़ होनेपर 'प्रेम' कहलाता है।"

जो भगवान् है, वही प्रेम है और जो प्रेम है, वही भगवान् है—उसी प्रकार, जैसे ब्रह्म है, वह ज्ञान है और जो ज्ञान है, वही ब्रह्म है। उसमें ज्ञाता और ज्ञेयका भेद नहीं है। द्रष्टा-दृश्यके भेदका लोप होकर जिस प्रकार अखण्ड दृङ्मात्र सत्ता बच रहती है, उसी प्रकार जो प्रेम है—रस है, उसमें रसिक-रस्य, आस्वादक-आस्वाद्य, भोक्ता-भोग्यका भेद नहीं है। ज्ञान वह अखण्ड सत्ता है, जिसमें ज्ञाता-ज्ञेयका भेद नहीं है; आनन्द वह अखण्ड सत्ता है, जिसमें भोक्ता-भोग्यका भेद नहीं है; सत्ता वह अखण्ड सत्य है, जिसमें कर्त्ता-कार्यका भेद नहीं है। इसी प्रकार प्रेम वह तत्त्व है, जिसमें प्रेमी एवं प्रियतम एक हो जाते हैं।

प्रेमके दो रूप हैं—प्यास और तृप्ति। भगवान्की प्राप्तिके लिये हृदयमें जो छटपटाहट, व्याकुलता है, उसका नाम है प्यास। जैसे ज्ञानकी प्यासका नाम 'जिज्ञासा' है, मोक्षकी प्यासका नाम 'मुमुक्षा' है, उसी प्रकार प्रभुकी प्राप्तिकी प्यासका नाम 'भक्ति' है। प्रेमका दूसरा स्वरूप 'तृप्ति' है। उस कल्याण-गुणगणसम्पन्न प्रभुका स्मरण करके, उनकी चर्चा सुनकर जो हृदयमें रसानुभूति होती है, वही 'तृप्ति' है। भगवान् एकरस आनन्दस्वरूप हैं। उनका आनन्द न कभी घटता है न बढ़ता है। एक व्रजके परम भक्तने भगवान्से प्रार्थना की—'प्रभो! आप सदैव एकरस रहते हैं। आपके आनन्दमें परिवर्तन होना चाहिये।' भगवान्ने कहा—'प्रतिदिन मेरा आनन्द प्राप्त करते-करते तुम तृप्त हो गये हो, अतः तुमको हमारा वियोग प्राप्त हो।' इतना कहकर भगवान् अदृश्य हो गये; भक्त अधीर होकर रुदन करने लगा। भगवान् पुनः प्रकट हुए, भक्त बहुत प्रसन्न हुआ। वह बोला—'आज तो आपका आनन्द बहुत बढ़ गया।' यह आनन्द कहाँसे उत्पन्न हुआ? यह निकला है वियोगसे ही।

'न विना विप्रलम्भेन सम्भोगः पुष्टिमश्नुते।'

महारासके अन्तर्धानका प्रसङ्ग है। व्रजाङ्गनाएँ कालिन्दीके तटपर बैठी हुई भगवान् श्यामसुन्दरका गुण-कीर्तन कर रही हैं। उसी समय भगवान्के चरणोंकी सुकुमारताका स्मरण करती हुई वे कहती हैं—

चलसि यद् व्रजाच्चारयन् पशून् नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम्।
शिलतृणाङ्कुरैः सीदतीति नः कलिलतां मनः कान्त गच्छति॥
(श्रीमद्भा० १०। ३१। ११)

"हे प्राणनाथ! आप जब कमलसे भी अधिक कोमल चरणोंसे वनमें गौएँ चराने जाते हैं, तब हमारा चित्त आपके चरण-कमलोंमें धान्योंके अग्रभाग एवं तृणाङ्कुरोंके चुभनेकी आशङ्कासे व्याकुल हो उठता है। तब हम हँसकर कहती हैं—'अरे मन! यदि उनको वन जानेमें कोई दुःख होता तो वे नित्य गोचारणके लिये वनमें जाते ही क्यों? उनको वनमें सुख मिलता है, तभी तो वे जाते हैं।" तब

मन झुँझलाकर कहता है—'अयि निर्बुद्धयो गोपालिकाः ! तस्य चरणतलद्वयं स्थलकमलादपि सुकुमारं भवत्येवं वने शिलातृणाङ्कुरशर्कराः सन्त्येव कथं पीडा न स्यात् ।—अरी गँवार ग्वालिनियो ! उनके चरण जब कमलसे भी अधिक कोमल हैं, तब कण्टकाकीर्ण वनमें विहरणसे उन्हें कष्ट क्यों नहीं होगा ?' व्रजाङ्गनाएँ हँसकर कहती हैं—'अरे मुग्ध ! स कोमलवालुकामये पथ्येव भ्रमति ।—रे मूर्ख मन ! वे तो कोमल बालुकामय पथपर ही चलेंगे, कुमार्गमें क्यों जायँगे ?' मन क्रोधवश होकर बोला—'अयि निर्विवेकाः ! गावः किं पथ्येव चरन्ति ?—अरी विवेकशून्याओ ! गायें क्या रास्तेपर ही घास चरती हैं ? क्या वे मार्ग छोड़कर कुमार्गमें नहीं जातीं ?' वे पुनः हँसकर कहती हैं—'अरे प्रेमान्ध ! स चक्षुष्मान् शिलतृणाद्योपरि कथं पादावर्पयेत् ?—अरे मन ! तू तो प्रेममें अंधा हो रहा है, परंतु उनके तो दो नेत्र हैं; तब वे शिल-तृणाङ्कुरोंपर चरण क्यों रखने लगे ?' पुनः मन भर्त्सना करते हुए कहता है—'अयि ! प्रेमगन्धेनापि रहिता यदा वेगवशाद् भ्रमाद्वा तदुपरि पादः पतेत् तदा किं स्यात् ?—सखियो ! मैं तो प्रेममें अंधा हो रहा हूँ, पर तुममें तो प्रेमकी गन्ध भी नहीं है । तभी तो तुम मुझसे लड़नेको उद्यत हो रही हो । वे चरण तो मुझमें रहते हैं, इसलिये मैं व्यथाका अनुभव कर रहा हूँ ।'

इस प्रकार प्रेम स्वतन्त्र है और परमाराध्य भी । भगवान्‌की भगवत्ता भी प्रेमके आश्रित है । अतः प्रेम उत्पत्ति और विनाशरहित है ।

प्रेमके विषयमें कहा गया है—

> प्रादुर्भावदिने न येन गणितो हेतुस्तनीयानपि
> क्षीयेतापि न चापराधविधिना नत्या न यो वर्धते ।
> पीयूषप्रतिवादिनस्त्रिजगतीदुःखद्रुहः साम्प्रतं
> प्रेम्णस्तस्य गुरोः किमद्य करवै वाङ्निष्ठतालाघवम् ॥

"प्रेम अपने प्रादुर्भावके कालमें धन-यौवन इत्यादि लघु-से-लघु कारणकी भी अपेक्षा नहीं रखता—'भक्त्या तुष्यति केवलं न च गुणैर्भक्तिप्रियो माधवः ।' जान-बूझकर अपराध करनेपर भी उसमें क्षीणता नहीं आती । विनयसे उसकी वृद्धि नहीं होती । वह अपने स्वाद एवं अमृतत्वादि गुणसे पीयूषको भी पराजित कर देता है तथा जागतिक दुःखका विरोधी है । ऐसे प्रगल्भ गुरुको वाणीका विषय बनाकर मैं तिरस्कृत क्यों करूँ ?''

प्रेमके मधुर संस्पर्शसे परमेश्वर भी अपनी सर्वज्ञता भूलकर प्रेमीको ही जानता है । उसकी सर्वज्ञता संकुचित हो जाती है । प्रेम-संस्पर्शसे जीव भी अपनी अल्पज्ञताका विस्मरण कर बैठता है । अब विचार यह करना है कि प्रेम भगवान्‌से अभिन्न है या उनका गुण है अथवा उनकी स्वरूपशक्ति है ? फिर भगवान्‌का उसके वशीभूत होना कैसा है ? वस्तुतः स्वतन्त्र कौन है—भगवान् अथवा उनकी शक्ति ? यदि शक्ति स्वतन्त्र है तो शाक्त मत अभीष्ट हो गया । यदि भगवान् स्वतन्त्र हैं तो प्रेमकी स्वाभाविक स्वतन्त्रता बाधित हो जायगी । इस अवस्थामें भगवान्‌की प्रेम-परवशता भी कथनमात्रके लिये ही रह जायगी । इससे यह सुस्पष्ट है कि प्रेम ही परमाराध्य है । उसके बहुत-से गुणोंमेंसे भगवत्ता भी एक गुण है । इसी कारण भगवत्ता प्रेमके अधीन है । उसका प्राकट्य भी प्रेमके अधीन है, जैसा रामचरितमानसमें भूतभावन आशुतोष शंकरके आश्वासनमें कहा गया है—

> तेहिं समाज गिरिजा मैं रहेऊँ । अवसर पाइ बचन एक कहेऊँ ॥
> हरि ब्यापक सर्बत्र समाना । प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना ॥
> देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं । कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं ॥
> अग जगमय सब रहित बिरागी । प्रेम ते प्रभु प्रगटइ जिमि आगी ॥
> (१ । १८४ । २—३½)

यहाँ जिज्ञासुओंके मनमें यह विचार उठना स्वाभाविक है कि प्रेम तो एक प्रकारका विशेष सम्बन्ध है । जिसके हृदयमें वह रहता है, वह उसका आश्रय है और जिसके प्रति वह होता है, वह उसका विषय है । इस प्रकार प्रेम सापेक्ष है । ऐसी दशामें वह अद्वैत कैसे हो सकता है, यह भी एक प्रश्न है । प्रेमकी विशेषता है कि उसमें प्रेमी और प्रियतम, दोनोंकी अपेक्षा रहनेपर भी वह दोनोंको एक कर देता है । यहाँ एकता गौण नहीं है, किंतु सहज सत्यस्वरूप है । नित्य-सम्बन्धात्मक होनेसे वह एकता भी नित्य ही सद्वितीय और अद्वितीय है । जिस प्रकार जल और तरंगका पारस्परिक सम्बन्ध अभिन्नताका है, उसी प्रकार जीव और भगवान्‌का सम्बन्ध भी अभिन्नताका है; अतः दोनोंका सम्बन्ध नित्य है । उधर दूसरी ओर एक तरंगका दूसरी तरंगसे जो सम्बन्ध है, वह अल्पकालिक है । इसी प्रकार एक जीवका दूसरे जीवसे सम्बन्ध अनित्य है । सत्य तो यह है कि प्रमेय वस्तु प्रमाणके अधीन होती है । प्रमाणमूर्धन्य श्रुति-प्रमाणसे सिद्ध होता है कि सद्वस्तु 'एकमेवाद्वितीयम्' है; उसमें सजातीय, विजातीय एवं स्वगत भेदका अभाव है । उसीको श्रुति 'रसो वै सः' कहकर रसस्वरूप कहती है । प्रेम भी रसात्मक होनेके कारण लोक और वेदमें रसरूपसे प्रसिद्ध है । 'रसो वै सः'—श्रुतिमें प्रेमको

ही रसरूप कहा गया है। वह रसरूप होनेपर भी नित्य नूतन रसोपलब्धिसे ही आनन्दी होता है; क्योंकि श्रुतिका अगला भाग है—'रसꣳह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।' अतः निर्विकार निखिल-दिव्य-सद्गुणगणालंकृत भगवान्‌को ही प्रेमका आश्रय स्वीकार करके रसिकजन शुद्ध प्रेमका अपरोक्ष साक्षात्कार करते हैं; क्योंकि भगवान् ही 'सकल बिकार रहित गत भेदा।' (मानस २। ९२। ४) हैं।

प्रेम अनादि और अनन्त है। वह नित्य तथा एकरस है, मादक और स्निग्ध है। नियम भावरूप होनेपर भी सादि और सान्त है। यद्यपि रस सब धर्मोंसे परे है, तथापि रसका भी एक परम सूक्ष्म धर्म होता है। रस उसी धर्मके द्वारा अपने सकल विलासोंको धारण करता है। रसके धर्म-धर्मिभावको लेकर ही रसोपासना निष्पन्न होती है।

प्रेम प्रेमके लिये होता है, सुखोपभोगके लिये नहीं। जो प्रेम सुख-कामनापर उत्सर्गीकृत है, वह प्रेम नहीं, प्रेमका आडम्बर है। पूज्य गोस्वामी तुलसीदासजीने इस तथ्यका बड़े ही सुन्दर ढंगसे निरूपण किया है। गोस्वामीजी-की लेखनीका चमत्कार यही है कि वह मूर्तिमन्त प्रेम है। यह मूर्तिमत्ता कहीं-कहीं इतनी मनोहर और सुन्दर है, इतनी प्राञ्जल और सरस है कि उसकी प्रशंसा नहीं की जा सकती। वे न तो 'ख'-पुष्प तोड़ते हैं न अगम-अगोचरका व्यापार और न अधरमें प्रासाद-निर्माण करते हैं। वे भगवान्‌के चरित्रमें प्रेमकी महत्ताका प्रदर्शन करते हैं और नित्यके कार्य-कलापमें 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की कल्पना। वनयात्राके समय भगवान् श्रीराम विदेहनन्दिनीसे कह रहे हैं—

कानन कठिन भयंकरु भारी। घोर घामु हिम बारि बयारी॥
कुस कंटक मग काँकर नाना। चलब पयादेहिं बिनु पद त्राना॥
चरन कमल मृदु मंजु तुम्हारे। मारग अगम भूमिधर भारे॥
कंदर खोह नदीं नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे॥
× × ×
नर अहार रजनीचर चरहीं। कपट बेष बिधि कोटिक करहीं॥
× × ×
लागइ अति पहार कर पानी। बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी॥
× × ×
हंस गवनि तुम्ह नहिं बन जोगू। सुनि अपजसु मोहि देइहि लोगू॥
रहहु भवन अस हृदयँ बिचारी। चंद-बदनि दुखु कानन भारी॥
(मानस २। ६१। २–३½, ६२। १, २½, ४)

उपर्युक्त भगवान् श्रीरामके कथनमें कितना निगूढ़ प्रेम है। यात्रा तथा वनवासके अवश्यम्भावी दुःखोंकी सूचीके सूचीवेधसे जनकनन्दिनी सम्भवतः प्रभावित हो जायँ और वन चलनेका आग्रह त्याग दें। प्रेमराज्यमें सब कुछ प्रेमीका प्रियतमके लिये होता है। मैथिली जनकनन्दिनीके उद्गार इन वचनोंको सुनकर नेत्रोंमें आ गये। गोस्वामीजीके शब्द हैं—

सुनि मृदु बचन मनोहर पिय के। लोचन ललित भरे जल सिय के॥
× × ×
उतरु न आव बिकल बैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही॥
बरबस रोकि बिलोचन बारी। धरि धीरजु उर अवनिकुमारी॥
(मानस २। ६३। १–२)

व्याकुलतावश माता जानकी उत्तर देनेमें असमर्थ हैं। यहाँ 'अवनिकुमारी' विशेषण कितना साभिप्राय है! प्रेमकी अखण्ड सत्ताका कैसा अनूठा प्रतिपादन है! अवनिकुमारी मानो इस अवनिपर प्रेमकी साकार प्रतिमाकी प्रतिष्ठा कर रही हों। जनकनन्दिनीका उत्तर है—

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते॥
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति बिहीन सबु सोक समाजू॥
भोग रोगसम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं॥
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारें। सरद बिमल बिधु बदनु निहारें॥
× × ×
प्रभु बियोग लवलेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना॥
(मानस २। ६४। २-४; २। ६५। ३)

प्रियतमके संयोगसे सभी संयोग होता है। इन पङ्क्तियोंमें कितना आत्मनिवेदन है, कितनी अमायिकता और सरलता है, कितनी हितकामना और सहानुभूति है। यह निर्बल हृदयकी अवतारणा नहीं, सबल चित्तकी उदात्त भावमयी सुन्दर प्रस्तावना है; प्रवञ्चनामय मानसकी प्ररोचना नहीं, मन, वचन और कर्मकी सत्यतामयी विभावना है। उत्तर बड़ा ही हृदयग्राही और मर्मस्पर्शी है।

प्रभुके हृदयमें भक्ति रहती है। कहा भी गया है—'भगवान् भक्तभक्तिमान्'। भक्ति रखनेका तात्पर्य है, अपनेको गौण बना देना तथा दूसरेको मुख्यता देना। प्रेमी भक्त इस शब्दका इसी अर्थमें प्रयोग करते हैं—'भाक्तमेतत्'। प्रभु मुख्य हैं, हमारा जीवन, हमारा हृदय, हमारा सर्वस्व उनका भाग है, उनका भोग्य है, उनके लिये है। भक्तिस्वरूपा जनकनन्दिनी स्वयं भक्ति हैं। भक्तिकी महिमाका कितना सुन्दर प्राञ्जल वर्णन इस कथनमें है। यहाँ भगवान् पराजित हैं। वैसे भगवान् अजित हैं, उन्हें कोई जीत नहीं सकता।

वेदान्तप्रतिपाद्य ब्रह्म तथा सात्वत-तन्त्रप्रतिपाद्य परमेश्वर— दोनों ही अजित हैं; किंतु यहाँ भगवान् पराजित हैं। यही भक्ति और भक्तकी महिमा है। व्रजमें भगवान् अपने सखाओंसे हार जाते हैं और उन्हें अपनी पीठपर ढोते हैं— 'उवाह कृष्णो भगवान् श्रीदामानं पराजितः।' माण्डवी-चित्त-चातक-नवाम्बुद भक्तशिरोमणि श्रीभरतलाल भी भगवान्की भक्त-भक्तिमत्ताके ज्वलन्त उदाहरण हैं—

सिसुपन तें परिहरेउ न संगू। कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू॥
मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही। हारेहुँ खेल जितावहिं मोही॥
(मानस २। २५९। ४)

अन्तमें जानकीजी कहती हैं—

अस जियँ जानि सुजान सिरोमनि। लेइअ संग मोहि छाड़िअ जनि॥
बिनती बहुत करौं का स्वामी। करुनामय उर अंतरजामी॥
राखिअ अवध जो अवधि लगि रहत न जनिअहिं प्रान।
दीनबंधु सुंदर सुखद सील सनेह निधान॥
× × ×
मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हहि उचित तप मो कहुँ भोगू॥
× × ×
अस कहि सीय बिकल भइ भारी। बचन बियोगु न सकी सँभारी॥
(मानस २। ६५। ४; २। ६६; २। ६६। ४; २। ६७। १)

शोकाकुल श्रीजनकनन्दिनी इस प्रकार प्रार्थना करती हुई थक जाती हैं।

गीतावलीमें उनकी शोक-संतप्त स्थितिका चित्र इस प्रकार मिलता है।—

'तुलसिदास प्रभु-बिरह-बचन सुनि, सहि न सकी मुरछित भइ भामिनि॥' (गीतावली २०५। ३)

इस दशाका श्रीरघुनाथजीके हृदयपर क्या प्रभाव पड़ता है? उनके निश्चयमें शीघ्र ही परिवर्तन हो गया—

देखि दसा रघुपति जियँ जाना। हठि राखें नहिं राखिहि प्राना॥
कहेउ कृपाल भानुकुलनाथा। परिहरि सोचु चलहु बन साथा॥
नहिं बिषाद कर अवसरु आजू। बेगि करहु बन गवन समाजू॥
(मानस २। ६७। १-२)

यह है प्रेमकी शक्ति।

चरण-शरण दीजिये

(रचयिता—श्रीरघुनन्दनप्रसादसिंहजी, पत्रकार)

प्रकृति है बदल रही, बदल रहा स्वभाव है।
धर्म-कर्मकी भी ओर अब नहीं झुकाव है॥
क्षमा-दया-श्रद्धा-उदारताका भी अभाव है।
कुमार्गकी ही ओर मन मलीनका बढ़ाव है॥
स्वजन-निजाश्रितोंमें बढ़ रहा बहुत कुभाव है।
श्रद्धा समाप्त है, घृणा है या कि मनसुटाव है॥
कमलनयन! न आपसे यहाँ कोई दुराव है।
अन्त है निकट, प्रभो भँवरमें पड़ी नाव है॥
कालका कहीं निकट ही पड़ चुका पड़ाव है।
जिससे जीर्ण-शीर्ण देहका न अब बचाव है॥
जानिये, यमराजका चल जाय कब कुदाव है।
यहाँ न जप, न तप, न मनमें भक्तिका ही भाव है॥
नाथ! आपसे न मनका रह गया लगाव है।
आस है यही कि आपका सरल स्वभाव है॥
मनमें काम-क्रोध-लोभ-मोहका जमाव है।
भाव-भजन-भक्तिपर भी पड़ रहा प्रभाव है॥
कुल-कुटुम्बने तजा है, आप तो सुधि लीजिये।
आपका स्वभाव नहीं, दाससे क्या खीजिये॥
दीन-बन्धु! अब न एक क्षण विलम्ब कीजिये।
दीनको, दया-निधान! चरण-शरण दीजिये॥

सदाचारका महत्त्व

(लेखक—पं० श्रीदेवदत्तजी मिश्र, काव्य-व्याकरण-सांख्य-स्मृतितीर्थ)

'समुल्लङ्घ्य सदाचारं कश्चिन्नाप्नोति शोभनम् ।'

'कोई भी मनुष्य सदाचारका उल्लङ्घन करके सद्गति प्राप्त नहीं कर सकता ।'

जगत्‌के प्राणिमात्र सुख प्राप्त करनेकी अभिलाषा रखते हैं, परंतु बहुत चेष्टा करनेपर भी सुखी नहीं होते । इसका प्रधान कारण यह है कि प्राणियोंसे सदाचारका पालन नहीं होता । सदाचारके बिना सुख प्राप्त करना उसी प्रकार असम्भव है, जैसे बिना सींचे बीजका अङ्कुरित होना । इसलिये सदाचार क्या वस्तु है, इस बातको जान लेना परमावश्यक है ।

महाभारतके अनुशासनपर्वमें युधिष्ठिरके पूछनेपर नैष्ठिक ब्रह्मचारी पितामहभीष्मने कहा था—

सर्वागमानामाचारः प्रथमं परिकल्पते ।
आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः ॥
ऋषयः पितरो देवा महाभूतानि धातवः ।
जङ्गमाजङ्गमं चेदं जगन्नारायणोद्भवम् ॥
योगो ज्ञानं तथा सांख्यं विद्याः शिल्पादि कर्म च ।
वेदाः शास्त्राणि विज्ञानमेतत् सर्वं जनार्दनात् ॥
एको विष्णुर्महद्भूतं पृथग्भूतान्यनेकशः ।
त्रींल्लोकान् व्याप्य भूतात्मा भुङ्क्ते विश्वभुगव्ययः ॥
(१४९ । १३७–१३९)

तात्पर्य यह है कि यह जगत् धर्मपर ही आधृत है और धर्म सदाचारसे ही रक्षित होता है । वस्तुतः सदाचार ही धर्म है और धर्मका पालन ही भगवान्‌की पूजा है । धर्मके स्वामी भगवान् अच्युत (विष्णु) हैं । ऋषिगण, पितृगण, देवगण, पञ्चमहाभूत, समस्त धातुगण एवं स्थावर-जंगम संसारके जितने दृश्य पदार्थ हैं, उनके निमित्त और उपादान कारण श्रीभगवान् नारायण ही हैं । एवं योग, ज्ञान और सांख्यदर्शन, चतुर्दश विद्याएँ, शिल्प (कारीगरी) अर्थात् स्थापत्य-कलाके कार्य, चारों वेद, सभी शास्त्र, विज्ञान आदिकी भी उत्पत्ति भगवान् विष्णुसे ही हुई है । अधिक क्या कहना है, एकमात्र भगवान् विष्णु ही अपने विराट् रूपसे जितने प्रकारकी दृश्य और अदृश्य वस्तुएँ हैं, उनमें व्याप्त हैं और वही अविनाशी भगवान् विष्णु तीनों लोकोंमें व्याप्त होकर विश्वकी रक्षा करते हैं ।

सदाचारको सभी शास्त्रोंमें प्रथम स्थान प्राप्त है । मनुस्मृतिमें राजर्षि मनु महाराजने सभी वर्णोंके लिये दस धर्म बतलाये हैं । यथा—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥
(६ । ९२)

अर्थात् धैर्य रखना, क्षमा करना, मनको वशमें रखना, मन-वचन-कर्मसे चोरी न करना, स्नानादिद्वारा बाहरी काम-क्रोधादिको रोककर अन्तःकरणको शुद्ध रखना, इन्द्रियोंको वशमें रखना, जल्दीसे बातोंको समझना, ज्ञान प्राप्त करना, मन, वचन तथा कर्मसे सत्यव्यवहार करना, किसीपर क्रोध न करना—ये ही दस धर्मके लक्षण हैं । इन्हीं दसोंका पालन करना सदाचारका पालन करना है ।

सदाचारके पालन करनेसे मनुष्य देवत्वको प्राप्त करता है और दुराचारसे असुरत्वको । गीतामें भगवान्‌ने इसी सदाचारको कायिक, वाचिक और मानसिक—तीन तरहके 'तप' शब्दसे कहा है ।

शरीरकी तपस्या—

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥
(१७ । १४)

अर्थात् देवता, ब्राह्मण, गुरु तथा शास्त्र जाननेवालोंकी पूजा करना, शरीर और मनसे शुद्ध रहना, सरलता (निष्कपट व्यवहार), ब्रह्मचर्यका पालन करना और किसी प्राणीको किसी तरहका कष्ट न देना—'शारीरिक तपस्या' कहा जाता है ।

वचनकी तपस्या—

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥
(१७ । १५)

कठोर वचन बोलनेसे सुननेवालेके हृदयमें चोट लगती है, जिससे उसका हृदय उद्विग्न हो जाता है; अतः कठोर वचन कभी नहीं बोलना चाहिये । सत्य ही बोलना चाहिये, मिथ्या नहीं । साथ-साथ यह भी देख लेना चाहिये कि वह वचन सुननेवालेके लिये हितकर है या नहीं और उसको अच्छा लगेगा कि नहीं । इन बातोंको सोचकर प्रिय और हित--इन दोनों

गुणोंसे युक्त वचन बोलना एवं वेद और आध्यात्मिक ग्रन्थोंका निरन्तर अभ्यास करना 'वचनकी तपस्या' है ।

अब भगवान् 'मानसिक तपस्या' बतलाते हैं, यथा—

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत् तपो मानसमुच्यते ॥
(१७ । १६)

इस श्लोकका तत्त्व यह है कि मनमें कलुषित भावको न आने देना और सदा दूसरेके प्रति सद्भावना रखना, मनको मौन रखना अर्थात् व्यर्थ चिन्तन न करना । और आत्मविनिग्रह अर्थात् मनको बलपूर्वक विषयोंके चिन्तनसे रोकना और भावकी शुद्धि, अर्थात् बुरी भावना कभी मनमें न लाना—यह 'मानसिक तप' है ।

इन तीनों तरहकी तपस्याओंके पालन करनेसे मनुष्य सदाचारी होता है । सदाचारी मनुष्यमें ही दैवी-सम्पदा रहती है और असदाचरणसे आसुरी-सम्पदा प्राप्त होती है । दैवी-सम्पदासे मुक्ति और आसुरी-सम्पदासे बन्धन प्राप्त होता है । यथा—

दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता ।
मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव ॥
(गीता १६ । ५)

अर्जुनको कुरुक्षेत्रके मैदानमें पहुँचते ही मोह हो गया था । उनको संग्राममें मारे जानेवालोंकी हिंसाके पापसे डर लगने लगा था । यद्यपि क्षात्रधर्मके अनुसार युद्धमें हत्याका दोष नहीं लगता—यह बात अर्जुनको ज्ञात थी, तथापि आत्मीय जनको विपक्षमें देखनेसे उन्हें मोह हो गया था ।

भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको सान्त्वना देते हुए कहा था, 'दैवी-सम्पदा तुमको प्राप्त है, तुम चिन्ता न करो । दैवी-सम्पदासे मनुष्य संसारमें आवागमनरूप बन्धनसे मुक्त हो जाता है ।'

श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा है—

"ओम्, तत्, सत्—इन तीन शब्दोंसे ब्रह्मका निर्देश किया जाता है। इन्हीं तीनोंसे ब्राह्मण, वेद और यज्ञोंकी सृष्टि हुई है।'''अतः सभी वेदमन्त्रोंके आरम्भमें 'ओम्' शब्दका उच्चारण किया जाता है एवं निष्काम दानादि कार्योंमें संकल्प करते समय पहले ओम् और तत् सत्-शब्दोंका उच्चारण किया जाता है । इसका तात्पर्य यह होता है कि सारी वस्तुएँ परमात्माकी ही हैं और यज्ञादिद्वारा ईश्वरके आराधनको बोध करानेवाला 'सत्' शब्द है । मनुष्योंके अच्छे भाव और श्रेष्ठ मनके भावका बोध करानेवाला साधुभाव है ।" यथा—

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥
तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपःक्रियाः ।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥
सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥
(गीता १७ । २३, २५-२६)

इसलिये श्रद्धाके साथ शास्त्रानुकूल आचरण ही 'सदाचार' है । इससे ऐहिक और पारलौकिक—दोनों तरहके सुख प्राप्त होते हैं । अतः श्रद्धाके साथ निष्काम भावसे यज्ञ, तप और दान आदि कर्मोंमें लगे रहनेको 'सत्' कहते हैं और विश्वासके साथ किये जानेवाले उन कर्मोंको भी 'सत्' शब्दसे ही कहा जाता है । यथा—

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ॥
(गीता १७ । २७)

इसके विपरीत आचरणको 'असदाचरण' कहते हैं । उससे न इस लोकमें सुख मिलता है न परलोकमें ही । यथा-

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥
(गीता १७ । २८)

इस संसारमें और परलोकमें सुखी होनेके लिये महर्षियोंने सदाचारको मुख्य कारण बतलाया है । अतः बाल्यावस्थामें ही बच्चोंको धार्मिक वातावरणमें रखना चाहिये और उनको सदाचारकी शिक्षा देनी चाहिये ।

माता-पिताके आचरणको देखकर बच्चे उनकी तरह चेष्टा करने लगते हैं; अतः सदाचारी माता-पिताकी संतानें भी सदाचारी होती हैं । इसलिये बच्चोंके समक्ष कुत्सित वचन नहीं बोलने तथा व्यवहार नहीं करना चाहिये । दस वर्षकी अवस्थाके बाद बालकोंका मानसिक और शारीरिक विकास बहुत तीव्र गतिसे होता है । उसी समय बच्चोंकी संगतिपर ध्यान देना चाहिये । यदि बच्चोंकी संगति असदाचारी बालकोंके साथ हो गयी तो उनका भी आचरण बुरा हो जायगा । उस अवस्थामें बुरा खेल खेलनेवाले लड़कोंकी संगति होनेसे आचरणपर बुरा प्रभाव पड़ता है ।

बच्चोंकी बुद्धिका प्रवाह जलके प्रवाहके समान होता है। वह नीचेकी ओरबहुत जल्दी चला जाता है। इसलिये अभिभावकोंको अपने बच्चोंपर अधिक ध्यान देनेकी आवश्यकता है। लोक-प्रसिद्ध महात्माओं और महापुरुषोंकी जीवनी पढ़नेसे यह बात ज्ञात होती है। जितने महापुरुष हुए हैं, वे बाल्यावस्थामें सदाचारी पुरुषोंकी संगति एवं सत्‌शिक्षासे वैसे ही हुए हैं।

एक अध्यापकने एक राजकुमारको बाल्यावस्थामें दंड देकर बहुत अच्छी शिक्षा दी। पश्चात् वही राजकुमार राजा हुआ और शिक्षककी स्थिति बहुत खराब हो गयी। शिक्षक महोदय भिक्षा माँगते हुए उस राजकुमारके सामने पहुँच गये। राजकुमारने पूछा कि 'आपको भिक्षा माँगनेमें कैसा आनन्द आता है?'

शिक्षक महोदयने कहा—'बहुत आनन्द आता है।'

राजकुमारने कहा—'मुझे आपने बहुत पीटा है। उसी मारका स्मरण हो आनेसे आपपर मुझे दया नहीं आती।' शिक्षकने कहा—'सुनो राजकुमार! इसी बातसे तो मुझे आनन्द है कि मैंने तुमको पीट-पीटकर ऐसी शिक्षा दी कि तुम्हारे राज्यमें मैं ही एक भीख माँगनेवाला हूँ और तुम्हारे शासनसे सभी प्रजा सुखी और सम्पन्न है।'

तब राजकुमारको ज्ञान हो गया और उसने गुरुके पैरोंपर गिरकर प्रणाम किया एवं उनके सुखसे रहनेका सारा प्रबन्ध करवा दिया। तात्पर्य यह है कि गुरुने बुरी संगतिसे बचाकर अच्छी शिक्षा दी थी, जिससे गुरुके प्रति जो उसकी बुरी भावना थी, निकल गयी।

बच्चोंकी बुद्धिका प्रवाह, सदाचारकी शिक्षासे सद्गुणकी ओर बढ़ते-बढ़ते उन्हें देवत्व प्राप्त करा देता है और असदाचारसे बुद्धिका प्रभाव दुर्गुणोंकी ओर बढ़कर असुरत्वको प्राप्त करा देता है एवं सांसारिक और पारलौकिक—दोनों सुखोंसे उन्हें वञ्चित करा देता है।

'भंजेउ राम संभु धनु भारी'

(लेखक—मानसकेसरी आचार्य श्रीकृपाशंकरजी रामायणी)

भगवान् भूतभावन चन्द्रमौलि देवाधिदेव महादेवके जिस विशाल कोदण्डके दर्शनमात्रसे ही विश्वके विश्रुत वीरोंका भी धैर्य डिग जाता था; श्रीशंकरके जिस भयंकर शरासनकी गुरुता और कठोरताकी विश्वमें धाक थी; सहज ही सुमेरु-गिरिको उठानेवाला बाणासुर भी जिस शरासनद्वारा पराभूत हो चुका था; कौतुक-ही-कौतुकमें कैलासपर्वतको उठाकर अपने भुजबलकी मर्यादा स्थापित करनेवाला विश्वविजयी बरिबंड वीर रावण भी अपनी असामर्थ्य प्रकट कर चुका था जिस धनुषके उठानेमें; जिस शिव-धनुषने 'नृप भुज बल बिधु सिव धनु राहू' की उपाधि उपलब्ध कर ली थी; जो कमठ-पृष्ठसे भी कठोर था और अपनी कठिनतासे कुलिशकी भी कठिनताको विलजित करता था, आज वह त्रिपुर-विनाशक विशाल पिनाक अपनी सत्ता समाप्त कर चुका है। वह रुद्रकोदण्ड खण्ड-खण्ड हो गया है। उसके भग्न युगल-खण्ड धरित्रीके वक्षपर पड़े हुए हैं। अवनितल-स्थित भग्न युगल खण्ड समुपस्थित वीरत्वाभिमानी वीरोंके बाहुबलके गर्वको खर्व कर रहे हैं, उन्हें लज्जावनत कर रहे हैं—उपहासास्पद बना रहे हैं; साथ ही वे रघुकुल-कमल-पतंग श्रीरामभद्रके प्रचण्ड भुजदण्डके अखण्ड पराक्रमको चतुर्दश भुवनमें विस्तृत कर रहे हैं तथा समुपस्थित आत्मीय जनसमुदायके मोदका संवर्धन भी कर रहे हैं। आत्मीयजन तार-स्वरेण एक स्वरसे श्रीरामका जयघोष कर रहे हैं—

> भरे भुवन घोर कठोर रव रबि बाजि तजि मारग चले।
> चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरुम कलमले॥
> सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकल बिकल बिचारहीं।
> कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं॥
> (रामायण १। २६०। १)

शंकरकोदण्ड-खण्डनकी भयंकर ध्वनिसे चतुर्दश भुवन परिपूर्ण हो गया। भगवान् अंशुमालीके तीव्रगामी मनोहर अश्व पथ-भ्रष्ट हो गये। दिग्गज चिग्घाड़ने लगे। धरित्री डोल उठी। उसके आधार-स्वरूप शेष, वराह और कच्छप कलमला उठे। देवता, राक्षस और मुनियोंने अपने हाथोंसे अपने श्रवणरन्ध्र सम्पुटित कर लिये। व्याकुलात्मा होकर विचार करने लगे वे "अवश्य ही भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने शंकर-कार्मुक खण्डित कर दिया है।' पूज्यचरण श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी महाराज अपनी भावमयी दृष्टिसे शंकर-कार्मुक-भञ्जक श्रीराघवेन्द्रका भावपूर्ण दर्शन करके उनकी प्रशस्ति करते हुए जयघोष समुच्चरित कर रहे हैं।

कविवर भोजराज अपने लब्धप्रतिष्ठ ग्रन्थ 'चम्पूरामायण' नामक ग्रन्थमें उत्कृष्ट कोटिकी प्राञ्जल साहित्यिक भाषामें अत्यन्त अनूठा भाव प्रस्तुत करते हैं—

रामाकर्षणभग्नकार्मुकभुवा ध्वानेन रोदोरुधा
हसक्षत्रयशःसितच्छदकुले जीमूतनादायितम्।
वीरश्रीप्रथमप्रवेशसमये पुण्याहघोषायितं
सीतायाः किल मानसे परिणये माङ्गल्यतूर्यायितम् ॥
रवः कठिनकर्षणत्रुटितचापजन्मा क्षणाद्
दिशां द्विरदहुंकृतैः कृतहरित्पतिस्वागतः।
जगद्भ्रमणकौतुकोच्चलितरामकीर्त्यङ्गना-
प्रयाणपटहध्वनिं प्रथयति स्म तारध्वनिः ॥
(१ । १७६–१७७)

भग्न-कार्मुक-समुत्पन्न आकाशसे पाताल-पर्यन्त व्याप्त होनेवाली भयंकर ध्वनिने अभिमानी राजाओंके हंसस्वरूप यशको भगानेके लिये, तिरोहित करनेके लिये मेघध्वनिका-सा कार्य किया, श्रीभगवान् रामचन्द्रजीकी विजयलक्ष्मीकी मङ्गलमयी प्रवेश-वेलामें पुण्याहवाचनका-सा कार्य किया और विश्वभ्रमणकी इच्छावाली श्रीरामकी दिव्य सुकीर्तिस्वरूपा ललनाकी प्रयाण-वेलामें पटहध्वनि अर्थात् दुन्दुभि-घोषका-सा कार्य किया।

'आनन्दरामायण'में शंकरकोदण्ड-खण्डन-ध्वनिका वर्णन अत्यन्त विचित्र एवं परम रोचक है—

चापभङ्गान्महानादस्तदाभूद्गगनाङ्गणे ।
चकम्पे धरणी स्वं चालिङ्ग्योन्मां भयाद् दृढम् ॥
चुक्षुभुः सागराः सर्वे निनेदुस्ता दिशो दश।
तारा निपेतुर्धरणीं शिरः शेषोऽप्यचालयत् ॥
ववुर्वाताः सुगन्धाश्च देवास्ते गगने स्थिताः।
वादयामासुर्वाद्यानि पुष्पौघैः समवाकिरन् ॥
स्वर्वेश्या ननृतुः खे हि देवास्तोषं प्रपेदिरे।
तदा निनेदुः सदसि भेर्यो दुन्दुभयो वराः ॥
नववाद्यस्वनाः सर्वे बभूवुर्जयनिःस्वनाः।
ननृतुर्वारनार्यश्च तुष्टुवुर्मागधादयः ॥
स्त्रियो गवाक्षरन्ध्रैश्च रामं पुष्पैरवाकिरन्।
तदा स रावणस्तूष्णीं लज्जयाऽऽनतमस्तकः ॥
मुकुटैरपि हीनश्च मुक्तकच्छोऽतिविह्वलः।
सभायां न क्षणं तस्थौ तूर्णं लङ्कापुरीं ययौ ॥
रामेण भग्नं तच्चापं दृष्ट्वा नार्यो मुदान्विताः।
चक्रुर्जयस्वनैर्घोषान् करैश्चक्रुश्च तालिकाः ॥
सीतापि मुदिता जाता हर्षरोमाञ्चनिर्भरा।
(आनन्दरामायण, सारकाण्ड, सर्ग ३, श्लोक १२७–१३५)

श्रीशिवधनुष टूटनेसे बड़ी भयंकर ध्वनि हुई। गगनाङ्गण गूँज गया। धरित्री प्रकम्पित हो उठी। श्रीगिरीश-नन्दिनी पार्वती भयके कारण दृढ़तासे श्रीशंकरजीके वक्षमें चिपक गयीं। सम्पूर्ण सागर क्षुभित हो गये। दशों दिशाएँ प्रतिध्वनित हो गयीं। तारे टूट-टूटकर अवनिमण्डल-पर गिरने लगे। श्रीशेषनाग अपने मस्तक घुमाने लगे। सुगन्धित पवन बहने लगा। गगनस्थ देवसमुदाय पुष्पसमूहोंकी वर्षा करता हुआ सुवाद्य वादित करने लगा। आकाशमें स्वर्वेश्याएँ नृत्य करने लगीं। देवगण परम संतुष्ट हो गये। उस समय सभामण्डपमें सुन्दर ढोल तथा नगारोंकी उत्तम ध्वनि होने लगी। नवीनातिनवीन सुवाद्य सुवादित हो उठे। जयघोष होने लगा। वाराङ्गनाओंकी नर्तन-क्रिया आरम्भ हो गयी। मागध और बन्दी आदि प्रशस्ति-गान करने लगे। जनकपुरनिवासिनी नारियाँ गवाक्षरन्ध्रोंसे श्रीरामके ऊपर पुष्प विकीर्णकर रही हैं। कोदण्डखण्डनकी प्रचण्ड ध्वनिसे दशग्रीव रावण लड़खड़ाकर गिर पड़ा। उसके धौतवस्त्रका कच्छ शिथिल होकर गिर पड़ा। उसके मुकुट मस्तकसे मेदिनीतलपर आ गये। लज्जासे उसका मस्तक अवनत हो गया। मुकुटविहीन, मुक्तकच्छ, अत्यन्त विह्वल और भयास्पद दशग्रीव रावण एक क्षण भी सभाके मध्य स्थित न हो सका। वह लङ्काकी ओर भाग गया। श्रीरघुनन्दनके द्वारा धनुर्भङ्गका अवलोकन करके सोत्साह करतलध्वनि करती हुई नारियाँ जयघोष करने लगीं। मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीता परम प्रसन्न हो गयीं। उनके दिव्य विग्रहमें आनन्दा-तिरेकसे रोमाञ्च हो आया।

धनुर्भङ्गका वर्णन करते हुए 'हनुमन्नाटक (१।२५)में भगवान्के पाणितीर्थका बड़ा भावपूर्ण वर्णन किया गया है—

तद्ब्रह्ममातृवधपातकिमन्मथारि-
क्षत्रान्तकारिकरसंगमपापभीत्या।
ऐशं धनुर्निजपुरश्चरणाय नूनं
देहं मुमोच रघुनन्दनपाणितीर्थे ॥

महाकवि केशवदासजीने अपने प्रसिद्ध रामकाव्य 'रामचन्द्रिका'में धनुर्भङ्गका वर्णन इस प्रकार किया है—

प्रथम टंकोर झुकि झारि संसार-मद
चंड को दंड रह्यो मंडि नव खंड को।
चालि अचला अचल, घालि दिगपाल-बल,
पालि रिषिराजके वचन परचंड को ॥
सोधु दै ईस कोस बोधु जगदीस को,
क्रोधु उपजाइ भृगुनंद बरिबंड को।
बाँधि सर स्वर्ग को साधि अपबर्ग धनु-
भंग को सब्द गयो भेदि ब्रह्मंड को ॥

भक्तहृदय महाकवि श्रीसूरदासजीने धनुर्भङ्गका वर्णन निम्न प्रकारसे किया है—

करुनामय जब चाप लियो कर, बाँधि सुदृढ़ कटि चीर।
भूभृतसीस नमित जो गर्बगत, पावक सींच्यौ नीर ॥
डोलत महि, अधीर भयौ फनिपति, कूरम अति अकुलान।
दिग्गज चलित, खलित मुनि-आसन, इंद्रादिक भय मान ॥
रवि मग तज्यौ, तरकि ताके हय, उत्पथ लागे आन।
सिव-बिरंचि व्याकुल भए धुनि सुनि, जब तोन्यो भगवान ॥
भंजन सब्द प्रगट अति अद्भुत, अष्टदिसा नभ पूरि।
स्रवण-हीन सुनि भए अष्टकुल नाग, गरब भय चूरि ॥
दुष्ट-सुरनि बोलत नर तिहिं सुनि, दानव-सुर बड़ सूर।
अष्ट श्रवण पूरिन ब्रह्मासुनि सदा सुभट भयपूर।
मोहित बिकल जानि जिय सबही, महा प्रलय कौ पूर ॥

संत-हृदय स्वनामधन्य श्रीकाष्ठजिह्व स्वामीका विचार धनुर्भङ्ग-प्रसङ्गपर अत्यन्त अनूठा है—

सिय जनु पदुम जनकपुर सर है।
धनुष गहिर जल, जाल जनक-पन करिन सकन कोऊ सर है ॥
उठी महक, त्रिभुवन में फैली, दौरे चाही नरवर है।
धँसत जाल में फँसतै पलटत बैठत बनि कायर है ॥
कौसिक मुनि जनु पवन मनोहर लेइ आयो तहँ राम भँवर है।
अनायास तें नाधि जाल कौ मिला पदुम जो श्रीधर है ॥
पदुम बिना न थिरात भँवर यह, पदुम भँवर बिनु दूबर है।
पदुम-भँवर-संबंध सनातन, देवरचित, नहिं बरबर है ॥

रामभक्तिरसलीन महात्मा रसिकविहारीजीने अपने रामकाव्य 'राम-रसायन' (६ । ४६, ४८, ५१) में धनुर्भङ्ग-प्रसङ्गपर कई अनूठे भाव लिखे हैं, जो सर्वथा मौलिक हैं।

सुनि कै उदंड बल प्रथमै कोदंड दुरि
जाय कै लजाय सो मँजूषा माहिं सो गयो।
रसिकविहारी तऊ अवधविहारी ताहि
हठ कै उठायो, मान ताको सब खो गयो ॥
संभु धनु हीय हो गरूर गरुता को भूर
चूर धूर ह्वै सो सूरता को नूर धो गयो।
सोई हूक लक की भभूक फूक फाटो हीय
याही ते पिनाक आप टूक-टूक हो गयो ॥
राम कर कोमल, कठोर संभुचाप हेरी
मिथिला-निवासिन कें सोच हिय भरिगो।
निपट हिरास लै उसाँस सब भाषी यह
रसिकविहारी कौन भूप मौन धरिगो ॥
जीरन भयो पै तऊ आज लौं कराल भारी
ऐते द्यौस माहीं धनु गरिगो न सरिगो।
एकै बार ऐसी परी आय सबही की धाय
लाय लगी हाय की पिनाक याते जरिगो ॥
परि-परि पायँ जाय गिरिजा निहोरी नित्य
संकर मनाये, पूजे गनपति भाव से।
दीने दान विविध विधान, जप कीने बहु
नेम-व्रत लीने सिय सहित उछाव से ॥
रसिकविहारी मिथिलेस की दुलारी दृढ़
प्रीति उर धारी अवधेस-सुत चाव से।
जनक-किसोरी के प्रताप ते पिनाक टूटो
टूटो है न जानौ राम बल के प्रभाव से ॥

प्रातःस्मरणीय आचार्यपाद श्रीगोस्वामीजी महाराजने अपने विभिन्न ग्रन्थोंमें धनुर्भङ्ग-प्रसङ्गको बड़ी भावपूर्ण शैलीमें निरूपित किया है। भावपूर्वक उसका मनन करें—

गहि करतल, मुनि-पुलक सहित कौतुकहिं उठाइ लियो।
नृपगन-मुखनि समेत नमित करि सजि सुख सबहिं दियो ॥
आकरष्यो सिय-मन समेत हरि, हरष्यो जनक-हियो।
भंज्यो भृगुपति-गरब सहित, तिहुँ लोक बिमोह कियो ॥
भयो कठिन कोदंड-कोलाहल प्रलय-पयोद समान।
चौंके सिव-बिरंचि-दिसिनायक, रहे मूँदि कर कान ॥
सावधान ह्वै चढ़े बिमाननि चले बजाइ निसान।
उमगि चल्यौ आनंद नगर, नभ जयधुनि मंगल गान ॥
(गीतावली रामायण १ । ९० । ६–९)

जिस समय भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने शिवधनुषको

खेल-ही-खेलमें उठा लिया; उस समय प्रभुकी उस दिव्य शोभाका अवलोकन करके महर्षि विश्वामित्रकी रोमावली भी खड़ी हो गयी। जिस समय धनुषको झुकाया, उस समय मानी राजाओंका मुख लज्जावनत हो गया और भक्तगण आनन्दमग्न हो गये। भगवान् श्रीहरिने श्रीविदेहराजको प्रसन्न करते हुए श्रीविदेह-नन्दिनीके मनके साथ उस धनुषको अपनी ओर खींच लिया। श्रीपरशुरामजीके गर्वके साथ ही उस गर्वीले धनुषको युग्म खण्डमें परिणत कर दिया। तीनों लोकोंको श्रीरामस्वरूपका ज्ञान हो गया; अतः वे मोह-विरहित हो गये। प्रलयकालीन मेघके गर्जनकी तरह भग्न पिनाकका शब्द श्रवण करके श्रीभगवान् शंकर, चतुर्मुख ब्रह्मा एवं सम्पूर्ण दिशाओंके अधीश्वरोंने चौंक-चौंककर अपने हाथोंसे कान बंद कर लिये। विचार करनेके बाद सावधान होकर वे अपने-अपने विमानपर आरूढ हो नगारे बजाते हुए चल पड़े। सम्पूर्ण नगरमें आनन्द उमड़ चला। आकाशमें जयध्वनि गूँज उठी। मङ्गलगान होने लगा।

मयन महनु पुर दहनु गहनु जानि
आनि कै सबै कौ सारु धनुष गढ़ायो है।
जनक सदसि जहाँ भले-भले भूमिपाल
किए बलहीन बलु आपनो बढ़ायो है॥
कुलिस कठोर कूर्म पीठ तें कठिन अति
हठि न पिनाकु काहूँ चपरि चढ़ायो है।
तुलसी सो राम के सरोज-पानि परसत ही
टूट्यौ मानो बारे ते पुरारि ही पढ़ायो है॥
(कवितावली १। १०)

मन्मथका दाह करनेवाले भगवान् शंकरने त्रिपुरासुरका विनाश कठिन समझ करके सम्पूर्ण कठोर वस्तुओंका तत्त्व मँगाकर इस त्रिपुरविनाशक पिनाकका निर्माण कराया था। इस कमठ-पृष्ठकी तरह दुर्भेद्य एवं कठिन कुलिश-कठोर कोदण्डको श्रीविदेहराजकी सभामें आनेवाले श्रेष्ठातिश्रेष्ठ वीरत्वाभिमानी राजा-महाराजागण नहीं चढ़ा सके। उन राजाओंके भुजबलसे यह धनुष और भी बलसम्पन्न हो गया—

'मनहुँ पाइ भट बाहुबल अधिक अधिक गरुआइ।'

वही पिनाक श्रीरामचन्द्रजीके कर-कमलके स्पर्शमात्रसे ही खण्ड-खण्ड हो गया। ऐसा ज्ञात होता है कि श्रीमहादेवजीने अपने इस पिनाकको बालकपनसे ही यह शिक्षा दी थी कि राम-कर-कमल-स्पर्श होते ही टूट जाना—

'जेहिं पिनाक बिनु नाक किए नृप सबहि बिषाद बढ़ायो।
सोइ प्रभु कर परसत टूट्यो जनु हुतो पुरारि पढ़ायो॥'
डिगति उर्बि अति गुर्बि, सर्ब पब्बै समुद्र-सर।
ब्याल बधिर तेहि काल, बिकल दिगपाल चराचर॥
दिग्गयंद लरखरत, परत दसकंधु मुक्ख भर।
सुर-बिमान हिमभानु भानु संघटित परसपर॥
चौंके बिरंचि संकर सहित, कोलु कमठु अहि कलमल्यौ।
ब्रह्मंड खंड कियो चंड धुनि जबहिं राम सिव-धनु दल्यौ॥
(कवितावली १। ११)

जब श्रीरामचन्द्रजीने चन्द्रमौलि-शरासन विखण्डित कर दिया, तब उसकी प्रचण्ड ध्वनि ब्रह्माण्डको विदीर्ण करके पार कर गयी। उसके प्रबल आघातसे सम्पूर्ण पर्वतों, समुद्रों और सरोवरोंके सहित भारी वसुंधरा डगमगा उठी। उस समय पातालनिवासी सर्पगण बधिरत्वको प्राप्त हो गये। जड-चेतनात्मक जगत् एवं दिशाधीश्वर छटपटा उठे। दिग्गज लड़खड़ाने लगे। दशग्रीव रावण भी मुखके बल गिर गया। देवताओंके विमान, सूर्य और चन्द्र गगनाङ्गणमें पारस्परिक टक्कर लेने लगे। भगवान् शंकरके साथ चतुर्मुख ब्रह्माजी चौंक पड़े। वराह, कच्छप एवं जगदाधार शेष भी कलमला उठे।

अंतरजामी राम मरम सब जानेऊ।
धनु चढ़ाइ कौतुकहिं कान लगि तानेऊ॥
प्रेम परखि रघुबीर सरासन भंजेऊ।
जनु मृगराज किसोर महागज गंजेऊ॥
गंजेउ सो गर्जेउ घोर धुनि सुनि भूमि भूधर लरखरे।
रघुबीर जस मुकता बिपुल सब भुवन पटु पेटक भरे॥
हित मुदित अनहित रुदित मुख छबि कहत कबि धनु जाग की।
जनु भोर चक्क चकोर कैरव सघन कमल तड़ाग की॥
(जानकीमङ्गल १०३-१०४)

सर्वान्तर्यामी भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने श्रीमिथिलेश-किशोरीजीकी हार्दिक स्नेह-व्यथाका सम्पूर्ण रहस्य ज्ञात कर लिया। उस व्यथाको निवृत्त करनेके लिये शिवधनुषको कौतुकपूर्वक ही उठाकर चढ़ा दिया, बलपूर्वक श्रवणपर्यन्त आकर्षित किया तथा उसे युगल खण्डोंमें परिणत कर दिया।

ऐसा ज्ञात होता है कि किसी महामत्त विशाल गजराजका विनाश किसी बलवान् केशरीकिशोरने कर दिया हो। गजराजके गर्जनकी ही तरह धनुष टूटनेकी घोर ध्वनिसे धरित्री एवं भूधर लड़खड़ा गये। जिस प्रकार गजके गिरनेसे गजमुक्ताएँ बिखर जाती हैं, उसी प्रकार श्रीराम-सुयशकी अनेकों मुक्ताओंसे समस्त भुवनस्वरूप सुन्दर पिटारे भर गये। जैसे प्रातःकाल सरोवरके सुन्दर तटपर सघन कमल विकसित दीख पड़ते हैं और चक्रवाक प्रसन्न हो जाते हैं, उसी प्रकार धनुषभङ्गसे प्रभुके हितैषी-गण प्रसन्न हो गये। साथ ही जैसे सरोवरस्थ चकोर विषण्णवदन हो जाते हैं, सघन कुमुदिनी सम्पुटित हो जाती है, उसी प्रकार श्रीराघवेन्द्रका अनहित चाहनेवालोंके मुख श्रीविहीन हो गये। ऐसा प्रतीत होता है, मानो अब ये रो पड़ेंगे।

श्रीरामचन्द्रस्वरूप पूर्ण चन्द्रका अवलोकन करके अगाध और सुहावने प्रेमस्वरूप जलसे परिपूर्ण श्रीविश्वामित्रस्वरूप पावन उदधिमें अतिशय पुलकस्वरूप ऊर्मियाँ उठने लगीं। अर्थात् शंकर-कोदण्ड-खण्डक श्रीरघुनन्दनका मुखावलोकन करके सहज स्नेही, विश्वहितैषी श्रीविश्वामित्रका हृद्गत आनन्द वृद्धिंगत हो रहा है। जनकनगरनिवासिनी युवतियाँ अपने कल-कण्ठसे कलगान कर रही हैं। यही तो इनकी आन्तरिक अभिलाषा है कि 'हम सुमंगल गावहीं।' वंदी, मागध और सूतगण विरुदावली वर्णन करके स्वयंको सौभाग्य-सम्पन्न कर रहे हैं। सम्पूर्ण आत्मीयजन अश्व, हस्ती, मणि, वस्त्र और वित्त न्योछावर कर रहे हैं। झाँझ, मृदङ्ग, शङ्ख, शहनाई, ढोल और दुन्दुभि आदि नाना प्रकारके सुवाद्य अवनि-अम्बरमें सुवादित हो रहे हैं। इस परमानन्द-सुधा-सागरकी आनन्दमयी लहरोंसे चतुर्मुख ब्रह्मा एवं अन्य देवगण भी आर्द्र हो गये। ब्रह्मा-प्रभृति समस्त देवता-गण श्रीरामस्तुति करके अपनी वाणी पवित्र कर रहे हैं। आत्माराम, आप्तकाम, पूर्णकाम, वीतकाम, सिद्ध, मुनीन्द्र, योगीन्द्र प्रभुकी दिव्य छटाका अवलोकन कर रहे हैं। उनकी वाणी स्वयंको कृतार्थ करती हुई प्रभुको शुभाशिष् प्रदान कर रही है। किंनरगण रसाल गान कर रहे हैं। देवाङ्गनाएँ गान करती हुई नर्तन कर रही हैं। अनेक रंगोंके सुवासित पुष्पोंकी सुन्दर वृष्टि हो रही है। त्रैलोक्यमें जय-जय-निनाद मुखरित हो रहा है। श्रेष्ठभाग्यशालिनी महारानी श्रीसुनयना अपनी दूरदर्शिनी सखियोंके साथ परम प्रसन्न हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि शुष्क होनेकी सम्भावनावाले शालिक्षेत्रमें समयसे आकस्मिक सुन्दर वृष्टि हो गयी है। योगिराज श्रीविदेहराजका सम्पूर्ण शोक समाप्त हो गया है। श्रीरामरूप परमानन्दकी समुपलब्धि हो गयी है उन्हें। इस दिव्य परमानन्द-सुधा-सरोवरमें निमग्न होनेपर किसी प्रकारके क्लेश तो रह ही नहीं सकते, साथ ही उसे और अन्य किसी सागरमें तैरनेकी आवश्यकता भी नहीं रह जाती। तैरते हुए साधकके लिये थाहरूप तो मेरे श्रीराम ही हैं। करुणार्द्रहृदया श्रीमैथिलीकी सुखस्थितिका वर्णन अशक्य है। वह वर्णन नेत्र, वाणी और लेखनीका विषय कथमपि नहीं है। तृषार्त्ता चातकीके स्वातिनक्षत्र-सम्बन्धी दिव्य अमृतोपम जलकी समुपलब्धिजन्य हृद्गत-सुखका वर्णन करनेमें कौन समर्थ है। चकोरकिशोरकी भाँति निर्निमेष निहार रहे हैं अपने परमाराध्य परमप्रेमास्पद-के सौन्दर्यनिधान मुख-कमलको परमभागवत श्रीलक्ष्मण—

कौसिक रूप पयोनिधि पावन। प्रेम बारि अवगाहु सुहावन॥
रामरूप राकेसु निहारी। बढ़त बीचि पुलकावलि भारी॥
बाजे नभ गहगहे निसाना। देवबधू नाचहिं करि गाना॥
ब्रह्मादिक सुर सिद्ध मुनीसा। प्रभुहि प्रसंसहिं देहिं असीसा॥
बरिसहिं सुमन रंग बहुमाला। गावहिं किंनर गीत रसाला॥
रही भुवन भरि जय जय बानी। धनुषभंग धुनि जात न जानी॥
मुदित कहहिं जहँ तहँ नर नारी। भंजेउ राम संभु धनु भारी॥

बंदी मागध सूतगन बिरुद बदहिं मति धीर।
करहिं निछावरि लोग सब हय गय धन मनि चीर॥

झाँझि मृदंग संख सहनाई। भेरि ढोल दुंदुभी सुहाई॥
बाजहिं बहु बाजने सुहाए। जहँ तहँ जुबतिन्ह मंगल गाए॥
सखिन्ह सहित हरषी अति रानी। सूखत धान परा जनु पानी॥
जनक लहेउ सुखु सोचु बिहाई। पैरत थकें थाह जनु पाई॥
श्रीहत भए भूप धनु टूटे। जैसें दिवस दीप छबि छूटे॥
सीय सुखहिं बरनिअ केहि भाँती। जनु चातकी पाइ जलु स्वाती॥
रामहि लखन बिलोकत कैसें। ससिहि चकोर किसोरकु जैसें॥
(मानस १।२६१।१-४; १।२६२; १।२६२।१-४)

गोस्वामीजी महाराज गीतावलीमें कहते हैं कि धनुषभङ्ग होते ही श्रीजनकराजका अशेष क्लेश निवृत्त हो गया। अत्यन्त सुप्रसन्न होकर उन्होंने श्रीरामभद्रको हृदयसे लगा लिया। ज्ञानकी महान् मर्यादा विनष्ट हो गयी। भाव-राज्यका पूर्ण साम्राज्य हो गया। 'द्विधाभग्नं धनुर्दृष्ट्वा

राजाऽऽलिङ्गय रघूद्वहम् ॥' (अध्यात्मरामायण) सुन्दर बधावे बजने लगे । मङ्गलगान आरम्भ हो गया । उस समय राजा, रानी और रङ्कोंको एकरस आनन्दकी उपलब्धि हुई । श्रीरामरसकी यही विशेषता है । श्रीरामका भक्त किसी कोटिका हो, आनन्दकी उपलब्धिमें एकरसता अवश्य होगी; क्योंकि श्रीराघवेन्द्र सबके अपने हैं। 'ये प्रिय सबहिं जहाँ लगि प्रानी ।' एक ओर तो सम्पूर्ण देवता एवं स्वर्गाधीश्वर प्रसन्नतासे नर्तन कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर पृथ्वीके गर्वीले राजागण दिवसचन्द्रकी तरह श्रीविहीन हो गये । वे अङ्करहित शून्यकी तरह सूने पड़ गये । 'अंक गएँ कछु हाथ नहिं, अंक रहें दसगून ।' इस शून्यके दर्शनका बड़े सुन्दर स्थलमें गोस्वामीजीने उल्लेख किया है । साधकोंके लिये अत्यन्त मननीय प्रसङ्ग है—

जनक मुदित मन टूटत पिनाक के।
बाजे हैं बधावने सुहावने मंगल-गान,
भयो सुख एक रस रानी राजा राँक के ॥
दुंदुभी बजाइ, गाइ, हरषि बरषि फूल,
सुरगन नाचैं नाच नायकहू नाक के।
तुलसी महीस देखे दिन रजनीस जैसे,
सूने परे सून-से मनो मिटाएँ आँक के ॥
(गीतावली १ । ९४)

रामभक्त महाकवि देव एक पदमें अनोखे भावोंको सँजोते हुए कहते हैं कि धनुषभङ्गके बाद श्रीराघवेन्द्रमुकुटमणि श्रीरामको वरनेके लिये पाँच कुमारियाँ आयीं । पाँचों ही श्रीरामका वरण करना चाहती हैं। इनके नाम हैं—लज्जा, कीर्ति, प्रीति, दीनता और श्रीसीताजी । परम रूपवती श्रीमैथिलीने परमसुन्दर स्वरूपवान् श्रीरामका वरण कर लिया, यह देखकर अरूपा लज्जाने अभिमानी राजाओंका वरण कर लिया, जनकनगरनिवासियोंको प्रीतिने वरण कर लिया, कीर्ति दिग्दिगन्तमें श्रीरामका गुण-विस्तार करने चली गयी एवं दीनता श्रीपरशुरामजीका पल्ला पकड़ना चाहती है—

आइँ पाँच कुमारी राम बरन।
लज्जा, कीरति, प्रीति, दीनता, जनकनंदिनी ठानि परन ॥
रूपवती सिय रूपवंत कें पहिराई जयमाल गरन।
बिना रूप की चारिउ कन्या कोपि चलीं तेहि चारि ढरन ॥
मानी राजन लाज बरेसि हठि, कीरति चली दिगंत तरन।
प्रीति जनकपुर रही, दीनता परसुराम को चहत धरन ॥
राम-सिया संजोग सनातन, नयो नहीं संजोग करन।
देवबधूटी नाचहिं गावहिं नौबति लागी झमकि झरन ॥

अन्तमें एक वात्सल्यमयी सखीकी बधाईसे इस लेखका उपसंहार कर रहा हूँ।

आनन्दसुधासागरमें निमग्न होती हुई एक सखी अत्यन्त सुन्दर ढंगसे अपना हृद्गत भाव अभिव्यक्त कर रही है। वह सम्बोधित करती है अपनी ही तरहकी एक दूसरी सहेलीको, जो श्रीरामको वात्सल्यभावसे निहारती है।

अरी सखी! श्रीरामभद्रके इस नयनानन्ददानदाता, लोक-लोचन-सुखदाता, मेघश्यामरूप-स्वरूप शिशुका तू प्रेम-स्वरूप क्षीरसे पोषण कर ले, अर्थात् स्नेह-दुग्धका पान करा दे। कौसल्यानन्दसंवर्धन श्रीमद्दशरथनन्दन रघुनन्दनने मण्डलीक-समुदायके प्रताप एवं गर्वको दलित करके संकल्प-मात्रसे ही पिनाककी नाक समाप्त कर दी । अरी सखी! मैंने श्रीरामचन्द्रको देखकर गतदिवस जो बातें कही थीं, वे सम्पूर्ण बातें आज ही सत्य प्रमाणित हो गयीं । महाराज श्रीजनकका, श्रीजनककिशोरीका, मेरा, तेरा और तुलसीदासजीका अब तो निश्चित ही भला होगा, अभिलाषाएँ पूर्ण होंगी। अरी सखी! श्रीकौसल्याकी कुक्षिपर संतुष्ट होकर अपना शरीर न्योछावर कर दे और साथ ही चक्रवर्ती महाराज श्रीदशरथजीकी बलैया ले ले—

लोचनाभिराम घनस्याम राम रूप सिसु
सखी कहै सखी सों तू प्रेम पय पालि री।
बालक नृपालजू कें ख्याल ही पिनाक तोर्‌यो
मंडलीक-मंडली प्रताप-दापु दालि री ॥
जनक को, सीय को, हमारो, तेरो, तुलसी को
सब को भावतो ह्वै है, मैं जो कह्यो कालि, री।
कौसिला की कोखि पर तोषि तन वारिऐ री,
राय दसरत्थ की बलैया लीजै आलि री ॥
(कवितावली १ । १२)

पढ़ो, समझो और करो

(१)

शिष्टाचार

उन दिनों गांधीजी यरवदा जेलमें थे। राष्ट्रीय आन्दोलनके कर्णधार होनेके नाते एक महान् दायित्व उनपर था। पर उस चिन्ताका भार वहन करते हुए भी गांधीजी प्रसन्न थे तथा अपना दैनिक कार्य बड़ी तत्परतासे करते थे। वे निकम्मेपनको मानवताका अभिशाप मानते थे और इसीसे वे स्वयं कभी निकम्मे नहीं रहते थे। जेलमें भी उन्होंने अपने लिये काम माँग लिया। काम मिला कपड़े सीनेका; पर इस कार्यके सम्पादनमें वही तत्परता, वही लगन थी, जो राष्ट्रीय आन्दोलनके संचालनमें थी।

चरखाका जबसे गांधीजीने आश्रय पकड़ा, तबसे वह उनका जीवन-साथी बना रहा। कहीं भी रहें, कैसे भी रहें, चरखा तो चलेगा ही। जेलमें भी प्रतिदिन चरखा चलता था। एक दिन बापू चरखा चला रहे थे। इतनेमें जेलके वरिष्ठ अधिकारी उनसे कुछ प्रश्नोंपर विचार-विमर्श करने तथा उनका कुशल-समाचार जाननेके लिये उनके पास आये। गांधीजी चरखा चलानेमें व्यस्त थे, अतएव अधिकारी महोदय उनके पास कमरेमें ही चले आये।

जेलमें अधिकारी महानुभाव जब निरीक्षणके लिये निकलते हैं तो जूता पहने ही रहते हैं। वे अधिकारी महानुभाव भी उसी परम्पराके अनुसार जूता पहने ही कमरेमें चले गये। गांधीजीने उनका स्वागत किया और उन्होंने जो-जो प्रश्न पूछे, उसका सदाकी भाँति विनोद एवं प्रसन्नताभरे शब्दोंमें उत्तर दिया। थोड़ी देरमें अधिकारी महोदय लौट गये।

अधिकारी महानुभावके जानेके पश्चात् चरखेको विराम देकर बापू उठ खड़े हुए और एक बाल्टी पानी भरकर ले आये। वे कमरेके उस भागको, जहाँ-जहाँ अधिकारी महानुभाव जूता पहने हुए चले थे, पानी डालकर धोने लगे। बापूको यह करते देख एक साथीने पूछा—'बापू! यह क्या कर रहे हैं?'

बापूने उत्तर दिया—'यह मेरे उठने-बैठने-सोनेका कमरा है; मैं इसे स्वच्छ कर रहा हूँ।''

साथी—'यह तो साफ ही था, गंदा किसने किया?'

बापू—'तुमने देखा नहीं, वे जेल-अधिकारी जूता पहने यहाँतक चले आये थे? उठने-बैठने-सोनेके स्थानमें जूता नहीं आना चाहिये। उससे वह स्थान गंदा हो जाता है। इसलिये मैं इसे साफ कर रहा हूँ।'

साथी—'जब आपने उन्हें जूता पहने देखा, तब उनसे कहा क्यों नहीं कि 'जूता कृपया बाहर उतार दीजिये।' बापू! आप अपने कमरेके बाहर एक तख्ती लगवा दीजिये कि 'जूता बाहर उतारकर ही अंदर आयें।''

बापू—'तख्ती लगानेकी क्या आवश्यकता है? इतना शिष्टाचार तो सभीको जानना चाहिये कि उठने-बैठने-सोनेके स्थानपर जूता नहीं लाया जाय। खैर, बहुत दिनोंके बाद आज हाथसे सफाई करनेका अवसर आया है। मुझे तो उन अधिकारी महोदयका आभार मानना चाहिये कि उन्होंने ऐसा पुण्यकार्य करनेका मौका दिया।

साथीको शिष्टाचारका एक नया सबक मिल गया।

(२)

सेवाका अधिकारी

कुछ वर्षों पूर्व एक समाज-सेवी नेता श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारसे मिलने आये और अपने सेवा-कार्योंकी बड़ी प्रशंसा करने लगे। इतना ही नहीं, वे समाजके एक-एक व्यक्तिके दोषोंका बखान करने लगे। श्रीभाईजी संत थे; उन्होंने तत्काल परख लिया कि जो दूसरोंके दोषोंका इस प्रकार बखान करता है तथा अपनी स्वल्प-सी सेवाकी इस प्रकार प्रशंसा करता है, वह सेवा क्या करेगा; सेवाके नामपर गंदगी ही बिखेरेगा। यक्ष्माके रोगीकी भाँति उसकी मन-बुद्धि अहंकारसे, व्यक्तिगत स्वार्थसे, काम-क्रोध आदि दोषोंसे ग्रस्त हैं। वह जहाँ जायगा, वहाँ इन्हीं दोषोंको बिखेरेगा। परिणामतः सेवाके बदले रोगकी वृद्धि होगी। अतएव श्रीभाईजीने सेवकजीको सावधान करते हुए कहा—'दूसरोंका सुधार वही कर सकता है, दूसरोंकी बुराई वही निकाल सकता है, जो स्वयं बुराइयोंसे रहित होकर सर्वथा

सुधर गया होगा। उपदेश देकर किसीकी सेवा करना बहुत बड़े दायित्वका कार्य है। दूसरेके घरका कूड़ा साफ करना पुण्य है; पर वह कूड़ा हम तभी साफ कर सकेंगे, जब हमारी झाड़ू साफ होगी, झाड़नेकी कला हम जानते होंगे और कौन कूड़ा है तथा कौन किसके लिये कामकी चीज है, इसको भलीभाँति हम जान लेंगे। तीनोंमेंसे एक बात भी नहीं होगी तो किसीका सुधार करने जाकर हम उसका बिगाड़ कर देंगे। हमारी झाड़ूमें यदि गंदा मैला लगा होगा तो हम दूसरोंके घरकी धूल झाड़नेके बदले गंदा मैला वहाँ फैला देंगे। झाड़ना नहीं जानते होंगे तो इकट्ठे कूड़ेको इधर-उधर बिखेर आयेंगे और 'कौन कूड़ा है'—इस बातको नहीं जानेंगे तो किसी बड़े ही कामकी आवश्यक वस्तुको हम कूड़ा समझकर फेंक देंगे और उनकी बड़ी हानि कर देंगे—उनके जीवनकी जड़ ही काट डालेंगे। मेरे सामने एक नहीं, अनेकों सेवकों—सुधारकोंका जीवन है, जो अपना विकारपूर्ण मन लेकर सेवा करने चले हैं और स्वयं पाप-पङ्कमें फँसनेके साथ-साथ जो सरल प्रकृतिके भाई-बहनोंके पतनमें हेतु बने हैं।

''मनुष्यकी वाणीसे तथा क्रियासे वही वस्तु प्रकट होती है, जो उसके हृदयमें होती है। मनुष्य चाहे कितना भी कपट-दम्भ करे, हृदयका असली भाव किसी-न-किसी रूपमें क्रियासे प्रकट हो ही जाता है। अतएव जबतक हमारे हृदयमें काम-क्रोध, असत्य, कपट, द्वेष-दम्भ, हिंसा-प्रतिहिंसा, लोभ-मोह, कामना-वासना, अभिमान-अहंकार, ममता-माया आदि दोष वर्तमान हैं, जबतक हमारे द्वारा पाप बनते हैं और उनमें हमें रस आता है, तबतक हम दूसरोंको क्या देंगे? ऐसे हृदयको लेकर किसीका सुधार करने जायँगे तो सिवा अपने हृदयकी इस गंदगीको वहाँ भी फैला देनेके और उसका क्या उपकार करेंगे? यदि समाजमें वैसी बुरी बातें पहले न भी रही होंगी तो हमारी वाणी और लेखनीसे निकली हुई बुरी बातें उसमें आ जायँगी, वहाँके वातावरणमें हम एक नया क्षोभ उत्पन्न कर देंगे। जागृति, क्रान्ति, सुधार, अधिकार, उन्नति, शिक्षा, बुद्धिवाद, व्यक्ति-स्वातन्त्र्य, लोक-तन्त्र आदि मनोहर नामोंपर हम लोगोंमें द्रोह, द्वेष, कर्तव्य-शून्यता, प्रमाद, अश्रद्धा, नास्तिकता, उच्छृङ्खलता, स्वेच्छा-चारिता, असंयम, असत्य, स्तेय, अहंकार, हिंसा आदि अनेकों दोषोंको बढ़ाकर परस्पर दलबंदियाँ बनाकर और उन्हें एक दूसरोंको गिरानेके प्रयत्नमें लगाकर उनके लोक-परलोक, दोनोंको नष्ट कर देंगे, जैसा कि आजकल न्यूनाधिकरूपमें संसारमें प्रायः सर्वत्र हो रहा है।

''प्रत्येक मनुष्यको आत्मसुधारके लिये प्रयत्न करना चाहिये। उन लोगोंको तो विशेषरूपसे करना चाहिये, जो समाज और देशकी सेवा करना चाहते हैं। वाणीसे या लेखनीसे वह कार्य नहीं होता, जो स्वयं वैसा ही कार्य करके आदर्श उपस्थित करनेसे होता है। यहाँतक कि उपदेशकी भी आवश्यकता नहीं होती; उस पुरुषका जीवन ही सबके लिये आदर्श और अनुकरणीय हो जाता है।

''आप दूसरोंके लिये उपदेशक बननेकी लालसाको दबाकर पहले अपनेमें योग्यता बढ़ायें एवं अपने जीवनको परम विशुद्ध और भगवान्‌की सेवाके परायण बना दें। फिर आपके द्वारा जो कुछ होगा, सब विश्वकी सेवा होगी। विश्वको सच्ची सेवा वही कर सकता है, जिसका जीवन विश्वात्मा भगवान्‌के अनुकूल होता है और जो अपनेको विश्वम्भरकी सेवामें समर्पित कर देता है।''

समाज-सेवी भाई श्रीभाईजीके शब्द सुनकर ग्लानिसे गड़ गये। उन्हें लगा—कहाँ मेरा जीवन, कहाँ मेरा सेवकका बाना! उन्होंने बड़े ही मन्द स्वरमें कहा—'भाईजी! आपने अपने जीवनका सत्य मुझे बता दिया। मैं देखता हूँ, अनुभव करता हूँ कि आप प्रतिदिन जो कुछ लिखते-कहते हैं, उससे बहुत अधिक आपके जीवनमें है। यही हेतु है कि आपके लिखने-कहनेका प्रभाव दूसरोंपर पड़ता है और वह प्रभाव स्थायी होता है। आशीर्वाद दीजिये कि पहले मैं स्वयं कुछ बनूँ, तब सेवकका बाना धारण करूँ।'

(३)

ऐसे होता है वैराग्य!

बात पुरानी है। उन दिनों प्रायः प्रत्येक राजा-महाराजाके दरबारमें कुछ कवि रहते थे, जो उनके शौर्य, उदारता, सद्गुणों आदिकी सच्ची-झूठी प्रशंसा किया करते थे। राजा-महाराजा प्रशंसाओंको सुनकर कवियोंको बहुमूल्य पुरस्कार देते थे। अच्छे-अच्छे कवि राजा-महाराजाओंके आश्रयमें पनपे हैं।

प्रसिद्ध महमूद सुल्तानके दरबारमें सनाई नामके एक शायर थे। वे अपनी प्रतिभाके लिये बड़े मशहूर थे, पर सुल्तानके दरबारमें रहनेके कारण समय-समयपर वे सुल्तानकी तारीफ़में भी शायरी किया करते थे। एक बार उन्होंने सुल्तानकी तारीफ़में कुछ शेर लिखे और उन्हें लेकर वे

दरबारको चले । मार्गमें एक पानगृह था । लायस्वार उस नगरका प्रसिद्ध विचारक था, पर साथ ही वह शराबी भी था । शराबके नशेमें भी लायस्वार नसीहतकी सुन्दर-सुन्दर बातें कहता था । शराब पीकर वह अपना होश नहीं गँवा बैठता था । जब सनाई पानगृहके समीप पहुँचा, तब उसने लायस्वारको कहते सुना—'सुल्तान महमूदके अंधेपनके नामपर एक प्याला भर दे ।' सनाई ये शब्द सुनते ही ठिठका और वहीं खड़ा हो गया ।

साक़ी (शराब पिलानेवाले)को लायस्वारके ये शब्द रुचिकर नहीं लगे । उसने डाँटकर कहा—'लायस्वार ! क्या बकते हो । सुल्तानके लिये ऐसी बात कहना बहुत बेजा है ।'

लायस्वार चुप रहनेवाला था नहीं । उसने हाथों-हाथ उत्तर दिया—'क्यों ? इसमें क्या बेजा है ? सुल्तानके पास आरामसे रहनेके लिये सब कुछ है—धन है, दौलत है, राज्य है; मगर वह उनमें संतोष न करके पड़ोसी राजाओंके साथ बराबर जंग करता रहता है और हजारों बेगुनाहोंको तकलीफ पहुँचाता है तथा मौतके घाट उतारता रहता है''' पर अच्छा, इस बातको छोड़ । ला ! शायर सनाईकी मूर्खताके नामपर एक प्याला भर दे ।'

अपने लिये लायस्वारके शब्द सनाईके कानोंमें विद्युत्-लहरीकी भाँति लगे । पर साथ ही उसमें एक जिज्ञासा जगी कि लायस्वारने उसके लिये ऐसा क्यों कहा। वार्तालाप सुननेके लिये उसने अपने कान खड़े कर लिये । साक़ीने पुनः डाँटते हुए कहा—'अरे । सनाई तो निहायत उम्दा शायर है; तुम उसे मूर्ख कैसे कहते हो ?'

लायस्वार साक़ीकी बात सुनकर जोरसे हँसा और देरतक हँसता रहा । फिर बोला—'सनाई निहायत उम्दा शायर है ! वह कागजको स्याहीसे रँगता तो जरूर है, लेकिन वह नहीं जानता कि खुदाने उसे पैदा क्यों किया है ? वह खुदाकी दी हुई क़ाबिलियत और शक्तिको अंधे मग़रूर सुल्तानकी तारीफ़ करनेमें ही लगाता है । वह मूर्ख नहीं तो क्या है ? अरे ! ऐसा मूर्ख तो ढूँढ़नेपर भी शायद ही मिले ।'

सनाई लायस्वारके शब्द बड़े ग़ौरसे सुन रहा था । उसके शब्द सनाईके हृदयमें तीर-से लगे । उसने जेबसे कागज निकाला, जिसपर शेर लिखे थे और उसे फाड़कर हवामें उड़ा दिया । उसने मन-ही-मन लायस्वारको नमस्कार किया और दरबारकी ओरसे मुँह मोड़ लिया । फिर दुनियाने केवल एक फ़कीरके रूपमें उसके दर्शन किये ।

(४)

सात्त्विक शौक

वाराणसीकी घटना है । मेहतर अपनी झाड़ूसे रास्तेको साफ कर रहा था । देखा कि चिथड़ेकी एक पोटली मार्गमें पड़ी है । उसको हटानेके लिये उसने झाड़ूको बढ़ाया, किंतु वह पोटली खिसकी नहीं । उसने पुनः झाड़ूको बढ़ाया, झाड़ूके आघातसे पोटलीमेंसे दो-तीन नकद चाँदीके रुपये खनाखन करते हुए बाहर निकल आये । मेहतरने आगे बढ़कर उस पोटलीको हाथमें उठाया तो उसमेंसे आठ-दस रुपये और निकल पड़े । दस-बारह रुपये एक गरीबके लिये बहुत बड़ी रकम थी । वह उन्हें पाकर प्रसन्नतासे भर गया, उसके शरीरपर रोमाञ्च हो आया, मुख प्रफुल्लित हो गया । वह भगवान्‌के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने लगा । रुपये उठाकर उसने अपने पास रख लिये तथा काम पूरा करके वह घरको चला गया ।

वहीं राजा साहबका मकान था । वे अपने मकानके चबूतरेपर बैठे हुए दतुअन कर रहे थे और अनजान-से बने हुए पूरी घटना देख रहे थे । मेहतरके चेहरेपर आनन्दकी झलक देखकर राजा साहबको बड़ा सुख मिला । एक निर्धन व्यक्तिको चंद चाँदीके टुकड़े कितनी प्रसन्नता, कितनी प्रफुल्लता प्रदान कर सकते हैं, इसे प्रत्यक्ष अनुभव करके राजा साहबका हृदय खिल उठा ।

राजा साहबके मकानके सामने ही एक सेठजी रहते थे । अपने मकानकी खिड़कीसे वे भी सब देख रहे थे । राजा साहबको वन्दन करके उन्होंने प्रश्न किया—'राजा साहब ! रुपयेकी पोटली तो आपने ही रखी थी; मेहतर उसे लेकर चला गया, तब भी आप कुछ नहीं बोले ? आपने उससे वह पोटली माँगी होती तो कुछ रंग खिलता ।'

'ऐसी मजाक करनेके लिये मैंने रुपये नहीं रखे थे । दस रुपये पाकर उस गरीब मेहतरको कैसा आनन्द मिलेगा, यह देखनेके लिये ही तो मैंने रुपये रखे थे । अनुभव कर लिया कि उस मेहतरको इतनी छोटी-सी रकम पानेपर भी कितना हर्ष हुआ है, कितना आनन्द मिला है । इस प्रकारके आनन्दका द्रष्टा बननेमें मुझे बहुत आनन्द मिलता है ।'

राजा साहबका ऐसा शौक देखकर सेठजीको आश्चर्य हुआ । ये ही राजा साहब पीछे 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र'के नामसे प्रख्यात हुए ।

—प्रह्लाद प्रजापति

'सुविचार'

(५)

भगवान्‌की वत्सलता

मेरे एक मित्र हैं, जो उच्च शिक्षा प्राप्तकर एक प्रसिद्ध धार्मिक संस्थामें कार्य करते हैं। उनकी अध्यात्मकी ओर प्रवृत्ति है और जीवनको साधनामय बनानेका प्रयत्न है। उनके जीवनकी एक घटना है। सन् १९५५ में वे मेरठ कालेजमें पढ़ रहे थे। बाल्यकालसे ही साधनाकी ओर रुचि होने आदिके कारण उनका घरसे सम्बन्ध-विच्छेद हो गया था; अतएव उनको घरसे अध्ययनका व्यय प्राप्त नहीं हो पाता था। कुछ स्नेही मित्र, स्वजन अपने अल्प साधनोंमेंसे कुछ बचाकर उन्हें दे दिया करते थे और उसीसे किसी प्रकार भोजन और वस्त्रकी व्यवस्था हो पाती थी। प्रत्येक महीने जब किसी स्वजन-मित्रसे कुछ प्राप्त होता, तब सर्वप्रथम वे महीनेभरके लिये आटा, लकड़ी और नमक—इन तीन चीजोंकी व्यवस्था कर लेते थे। इस व्यवस्थाके पश्चात् यदि कुछ रुपये और बचे तो उनसे साग-सब्जी आदिका काम चलता था।

इस प्रकार अभाव एवं तपस्याका जीवन चल रहा था। एम्० ए०का प्रथम वर्ष बीता; द्वितीय वर्ष आरम्भ हुआ। कुछ मास बीत गये। मनमें इस कठिनाईभरे जीवनके प्रति बड़ा संतोष था। किंतु एक बार ऐसी स्थिति हुई कि इन्हें लगातार आठ दिनोंतक रोटी और नमकपर ही रहना पड़ा। उधर परीक्षामें अच्छी श्रेणी लानेके लिये परिश्रमके साथ अध्ययन चल रहा था। शरीरमें शिथिलताका बोध होने लगा। एक दिन वे अपने छात्रावासकी सीढ़ियोंसे उतर रहे थे कि सिरमें चक्करका अनुभव होने लगा। लगा, भगवान् परीक्षा ले रहे हैं। किसीसे कुछ कहना नहीं था और स्वतः अधिक रुपयेकी सम्भावना थी नहीं। मन व्यथासे भर गया, आँखोंसे जल बह चला। मुँहसे निकल पड़ा—'नाथ! निष्ठाके तन्तुको इतना मत तानिये कि वह टूट जाय। आप कठिन परीक्षा ले रहे हैं, नाथ! परंतु मैं तो निर्बल प्राणी हूँ; बस, लाज आपके ही हाथ है।' जैसे-तैसे अपनेको सँभालकर वे कालेज चले गये। वहाँ भी मन-ही-मन यही प्रार्थना चलती रही।

सच्चे हृदयकी प्रार्थना भगवान्‌के हृदयको स्पर्श कर जाती है। भक्तके अश्रुकण भगवान्‌को विह्वल कर देते हैं। योग-क्षेमका वहन करनेवाले—'योगक्षेमं वहाम्यहम्'—अशरणशरण अपने भक्तकी व्यवस्था करनेके लिये अधीर हो जाते हैं। तब इस अन्तर्हृदयकी पुकारको वे कैसे नहीं सुनते? उन्होंने सुना और तत्काल उसकी व्यवस्था की। भक्त इस क्षण पुकार करता है, पर भगवान्‌के ध्यानमें वह पुकार बहुत पहले ही आ जाती है और उसके अनुरूप वे उसकी व्यवस्था कर देते हैं। यहाँ भी ऐसा ही हुआ। उन मित्रकी अपने विभागाध्यक्षसे अचानक भेंट हो गयी। वे देखते ही बोले—'तुम्हें प्राचार्य महोदय याद कर रहे हैं, उनसे अवश्य मिल लेना।'

प्रोफेसर महोदयके शब्द सुनकर मेरे मित्र कुछ विचारमें पड़ गये कि प्राचार्यने आज उन्हें क्यों स्मरण किया। वे तुरंत प्राचार्य महोदयसे मिलनेके लिये उनके कमरेमें पहुँचे। ज्यों ही उन्होंने प्राचार्यको प्रणाम किया, वे बोले—'तुम्हारे नामसे १०१) एक सौ एक रुपयेका चेक आया है, इसके रुपये बैंकसे मँगवाने हैं क्या?' चेककी बात सुनते ही मेरे मित्रने बड़े आश्चर्यसे पूछा—'यह चेक कहाँसे आया है?' प्राचार्य महोदयने बताया कि जयपुरसे किसी सज्जनने भेजा है। अधिक जानकारी प्राप्त करनेकी जिज्ञासा होते हुए भी प्राचार्यसे पुनः प्रश्न करनेका मेरे मित्रको साहस नहीं हुआ। बस, उन्होंने चेकके रुपये मँगवानेकी स्वीकृति दे दी और वहाँसे लौट आये।

एक पैसा पास नहीं तथा सिरमें चक्कर अनुभव हो रहा था, ऐसी कठिन अवस्थामें एक सौ एक रुपया बहुत बड़ी बात थी। मनमें प्रसन्नता हुई, पर साथ ही यह विचार चल पड़ा कि 'किसने रुपया भेजा, क्यों भेजा? आजतक तो कभी नहीं भेजा।' दूसरे दिन वे कालेजके आफिसमें पहुँचे और वहाँके प्रधान बाबूसे मिलकर यह पता लगाया कि वह चेक कहाँसे आया था। पता चला—जयपुरके किसी अवकाश-प्राप्त आयकर अधिकारीने चेक भेजा था। मित्र महोदयका उस समयतकका जीवन उत्तरप्रदेशमें ही व्यतीत हुआ था। राजस्थानमें रहनेवाले किसी सम्भ्रान्त व्यक्तिसे उनका परिचय नहीं था। वे आश्चर्यचकित थे कि एक अपरिचित अफसरने उनके लिये १०१) रुपयेका चेक क्यों भेजा। पर तत्क्षण ही यह विचार हृदयमें उत्पन्न हुआ कि उनके इष्टदेव ही उनकी व्यथाभरी पुकार सुनकर व्यवस्था कर रहे थे। भगवान्‌की कृपालुता एवं वत्सलताका स्मरण कर उनका हृदय भर आया और वे चुपचाप लौट आये।

आज भी मित्र महोदयके लिये यह प्रश्न बना हुआ है कि चेक भेजनेवाले सज्जन कौन थे और उन्होंने चेक क्यों भेजा। आज भी वे भगवान्‌की इस वत्सलताका स्मरण कर प्रेम-विह्वल हो जाते हैं।

—कृष्णचन्द्र

परमपूज्य ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकी लिखी हुई ८६ पुस्तकें

पुस्तकका नाम	मूल्य
श्रीमद्भगवद्गीता तत्त्व-विवेचनी	४.००
भक्तियोगका तत्त्व	१.२५
आत्मोद्धारके साधन	१.२५
कर्मयोगका तत्त्व	१.१२
महत्त्वपूर्ण शिक्षा	१.००
,, सजिल्द	१.३७
परम साधन	१.००
,, सजिल्द	१.३७
मनुष्य-जीवनकी सफलता	१.००
,, सजिल्द	१.३७
मनुष्यका परम कर्तव्य	१.००
परमशान्तिका मार्ग	१.००
,, सजिल्द	१.३७
ज्ञानयोगका तत्त्व	१.००
,, सजिल्द	१.३७
प्रेमयोगका तत्त्व	१.००
,, सजिल्द	१.३७
आत्मोद्धारके सरल उपाय	.७५
तत्त्व-चिन्तामणि बड़ा	
भाग १	.६२
भाग २	.८७
भाग ३	.७०
भाग ४	.८१
भाग ५	.८१
भाग ६	१.००
भाग ७	१.१२
तत्त्व-चिन्तामणि गुटका	
भाग १ सजिल्द	.५०
,, २ सजिल्द	.५६
,, ३ सजिल्द	.५०
,, ४ सजिल्द	.६२
,, ५ सजिल्द	.५६
परमार्थ-पत्रावली	
भाग १	.२५
भाग २	.२५
भाग ३	.५०
भाग ४	.५०

पुस्तकका नाम	मूल्य
अध्यात्मविषयक पत्र	.५०
शिक्षाप्रद पत्र	.५०
स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा	.३७
रामायणके कुछ आदर्श पात्र	.३७
बालकोंके कर्तव्य	.३०
महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	.२५
शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	.२५
आदर्श भ्रातृ-प्रेम	.२०
ध्यान और मानसिक पूजा	.२०
ब्रह्मचर्य और संध्या-गायत्री	.२०
आदर्श नारी सुशीला	.२०
गीता-निबन्धावली	.१६
नवधा भक्ति	.१२
श्रीभरतजीमें नवधा भक्ति	.१२
बाल-शिक्षा	.१२
भारतीय संस्कृति एवं शास्त्रोंमें नारीधर्म	.१५
तीन आदर्श देवियाँ	.१२
ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप	.१०
नारीधर्म	.१०
गीता पढ़नेके लाभ	.१०
श्रीसीताके चरित्रसे आदर्श शिक्षा	.०८
श्रीप्रेम-भक्ति-प्रकाश	.०६
सच्चा सुख और उसकी प्राप्तिके उपाय	.०६
सामयिक चेतावनी	.०६
श्रीमद्भगवद्गीताका तात्त्विक विवेचन	.०६
गीतोक्त कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोगका रहस्य	.०५
संत-महिमा	.०५
वैराग्य	.०५
भगवान् क्या हैं ?	.०३
भगवान्‌की दया	.०३

पुस्तकका नाम	मूल्य
सत्सङ्गकी कुछ सार बातें	.०३
गीतोक्त सांख्ययोग और निष्काम कर्मयोग	.०३
सत्यकी शरणसे मुक्ति	.०३
भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय	.०३
व्यापारसुधारकी आवश्यकता	.०३
स्त्रियोंके कल्याणके कुछ घरेलू प्रयोग	.०३
परलोक और पुनर्जन्म	.०३
ज्ञानयोगके अनुसार विविध साधन	.०३
अवतारका सिद्धान्त	.०३
चतुःश्लोकी भागवत, सटीक	.०३
धर्म क्या है ?	.०२
तीर्थोंमें पालन करने योग्य कुछ उपयोगी बातें	.०२
महात्मा किसे कहते हैं	.०२
ईश्वर दयालु और न्यायकारी है	.०२
प्रेमका सच्चा स्वरूप	.०२
हमारा कर्तव्य	.०२
ईश्वरसाक्षात्कारके लिये नाम-जप सर्वोपरि साधन है	.०२
त्यागसे भगवत्प्राप्ति	.०२
चेतावनी	.०२
कल्याण-प्राप्तिकी कई युक्तियाँ	.०२
शोकनाशके उपाय	.०२
श्रीमद्भगवद्गीताका प्रभाव	.०२
गजल गीता	.०१
English Commentary on Śrīmad Bhagavad-Gīta	8.00
Gems of truth Part I	.75
,, ,, Part II	.75
What is God ?	.12
What is Dharma ?	.05

सभी पुस्तकोंका डाकखर्च अलग

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

रजि० सं० एल्० १७५

मनमोहन श्रीकृष्णसे प्रार्थना

(राग लावनी)

रूपरसिक [illegible] मनोज-मन-हरन सकल गुन गरबीले ।
छैल छबीले, चपल लोचन-चकोर चित-चटकीले ॥

रतन-जटित सिर मुकुट, लटक रहि सिमट स्याम लट घुँघरारी ।
बालबिहारी, कन्हैयालाल चतुर तेरी बलिहारी ॥
लोलक मोती कान, कपोलनि झलक बनी निरमल प्यारी ।
ज्योति उज्यारी, हमैं हर बार दरस दै गिरिधारी ॥
बिज्जु-छटा-सी दंत-छटा, मुख देखि सरद-ससि सरमीले ।
छैल छबीले, चपल लोचन-चकोर चित-चटकीले ॥

झँगुली झीन जरीपट, कछनी, स्यामल गात सुहात भले ।
चाल निराली, चरन कोमल पंकज के पात भले ॥
पग नूपुर-झनकार, परम उत्तम जसुमति के तात भले ।
संग सखन के, जमुन-तट गौ-बछरान चरात भले ॥
ब्रज-जुवतिन कौ प्रेम-निरखि कैं घर-घर माखन गटकीले ।
छैल छबीले, चपल लोचन-चकोर चित-चटकीले ॥

गावैं बाग-बिलास, चरित हरि सरद-रैन रस-रास करैं ।
मुनिजन मोहे, कृष्न कंसादिक-खल-दल नास करैं ॥
गिरिधारी महाराज सदा श्रीब्रज वृंदाबन वास करैं ।
हरि-चरित्र कौं स्रवन सुनि-सुनि करि मन अभिलाष करैं ॥
हाथ जोरि कैं करै बीनती 'नारायन' दिल दरदीले ।
छैल छबीले, चपल लोचन-चकोर चित-चटकीले ॥

—नारायण स्वामी

आवश्यक प्रार्थना

इधर हमारे कुछ सदस्योंसे हमें ऐसी रसीदें मिली हैं, जिनपर लिखा है—"सदस्यता-पत्र—कल्याण-विभाग, 'गीताप्रेस', गोरखपुर (उ० प्र०)" । ये रसीदें देकर किन्हीं महानुभावने उनसे 'कल्याण'का वार्षिक शुल्क वसूल किया है । ये रसीदें फर्जी हैं । हमारे यहाँसे इस प्रकारकी कोई रसीद-बुक किसी व्यक्तिको 'कल्याण'-का चंदा वसूल करनेके लिये नहीं दी गयी है । गीताप्रेसकी ओरसे न तो किसीको 'कल्याण'की एजेंसी दी गयी है और न कोई ऐसा व्यक्ति ही नियुक्त किया गया है, जो भ्रमण करके चंदा वसूल करे । अतः 'कल्याण'-के सदस्यों एवं प्रेमियोंसे प्रार्थना है कि वे किसी भी अनधिकृत व्यक्तिको 'कल्याण'का चंदा कृपया न दें ।

व्यवस्थापक—'कल्याण'